RNI क्र. 50309/85 डाक पंजियन क्र. म.प्र. /261/भोपाल 2015-2017 प्रकाशन तिथिः 20 फरवरी

बाल विज्ञान पत्रिका मार्च 2015

चकमक

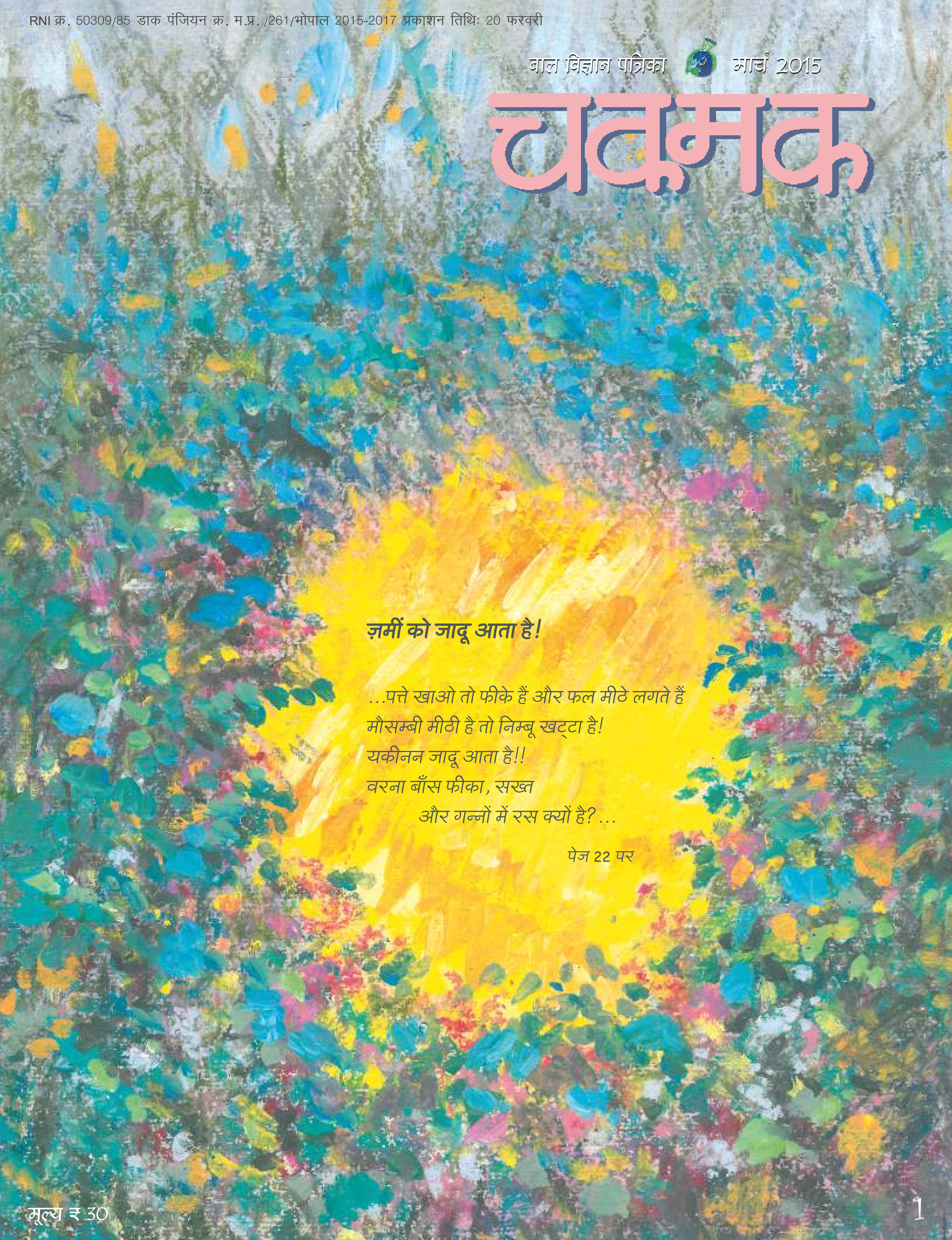

ज़मीं को जादू आता है!

...पत्ते खाओ तो फीके हैं और फल मीठे लगते हैं
मौसम्बी मीठी है तो निम्बू खट्टा है!
यकीनन जादू आता है!!
वरना बाँस फीका, सख्त
और गन्नों में रस क्यों है? ...

पेज 22 पर

मूल्य ₹ 30

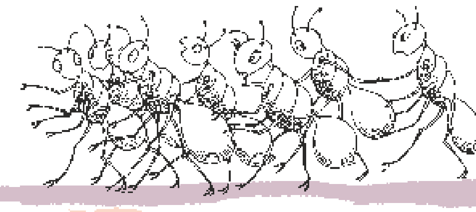

हमने संवारी है एक डायरी... तुम्हारे लिए!

आकर्षक चित्रों से सजे-धजे डेढ़ सौ पन्ने

इसका नाम है – दुबली चींटी सबसे आगे थी...

यह डायरी बहुत ही दोस्ताना स्वभाव की है। तुम्हारे पास आते ही तुमसे बातें करेगी...रोज़-रोज़ तुम्हारे ही पड़ोस की नई-नई चीज़ों से, लोगों से मिलवाएगी। तुम्हारे साथ चाँद-तारे निहारेगी। तुम्हें चित्र बनाने के लिए नए-नए विषय सुझाएगी। कई बातें होंगी जो तुम अब तक किसी को नहीं बताते होगे...तुम इस डायरी से साझा कर सकते हो।

आज
रात का आसमान रोज़
बदलता है।
कई तारे और ग्रह कभी
दिखते हैं, कभी नहीं।
कुछ तो अपनी जगहों
से ही सरक जाते हैं।
चाँद तो इस मामले में
बड़ा उस्ताद है।
कभी गोल-गोल,
कभी फाँक-फाँक।

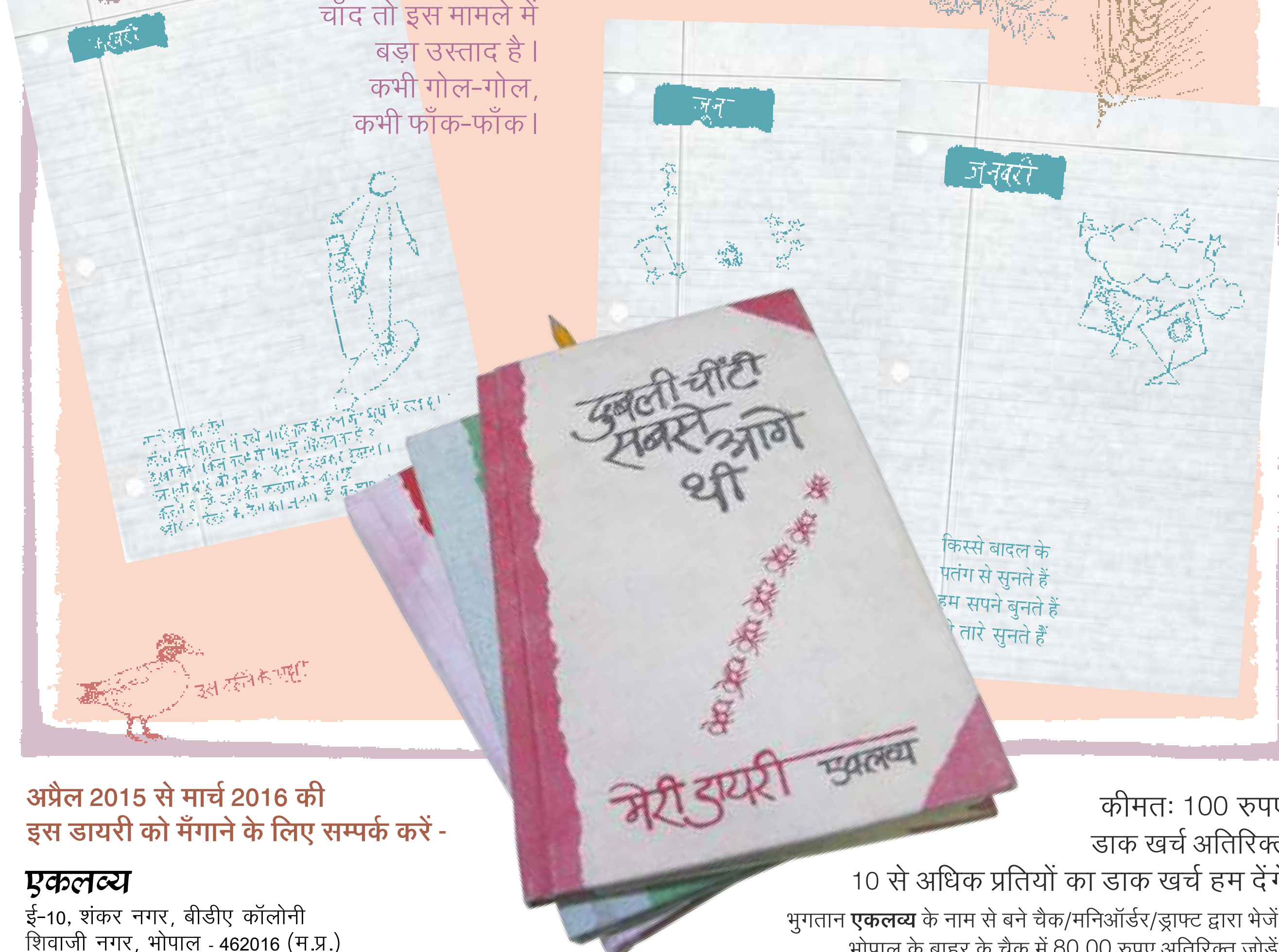

अप्रैल 2015 से मार्च 2016 की इस डायरी को मँगाने के लिए सम्पर्क करें -

कीमत: 100 रुपए
डाक खर्च अतिरिक्त
10 से अधिक प्रतियों का डाक खर्च हम देंगे

भुगतान **एकलव्य** के नाम से बने चैक/मनिऑर्डर/ड्राफ्ट द्वारा भेजें।
भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी
शिवाजी नगर, भोपाल - 462016 (म.प्र.)
फोन - 09425010115, 0755 - 2671017, 4252927
email - chakmak@eklavya.in, pitara@eklavya.in www.chakmak.eklavya.in www.eklavya.in

इस अंक में

4 हवाएँ/ अरुण कमल
6 बोली रंगोली - पहले पाँच
8 सिकन्दर के दस सवाल/ प्रियंवद
10 एक था हाजी एक था नाजी/ स्वयं प्रकाश
12 आइडिया/ संजीव
15 माथापच्ची
16 रिक्शे और ज्यामिती की गतिविधि/ विवेक मेहता
17 मेरी डायरी के कुछ पन्ने/ रवि कुमार बाँसफोर
19 एक फूल खिला/ आलोक वर्मा, नरेश सक्सेना
20 रफ्तार मिस्त्री का स्कूटर/ प्रभात
22 ज़मीं को जादू आता है!/ गुलज़ार
24 पहली रेल का किस्सा/ किशोर दरक
26 मेरा पन्ना
28 एक बहरूपिए से मुलाकात/ सुशील शुक्ल
30 अलविदा: आर के लक्ष्मण
31 गुगली/ राजेन्द्र धोड़पकर
32 भूत को सफेद ही क्यों दिखाया जाता है?/ रमा चारी
36 कोठी बनाल/ म्यूरियल काकानी
40 मगरमच्छों से शिकार छीनना/ जसबीर भुल्लर
42 बोली रंगोली
43 घोड़ा गाड़ी/ शरीफ अंसारी
44 चित्रपहेली/ कविता तिवारी

बाल विज्ञान पत्रिका
चकमक
अंक 342 मार्च 2015

आवरण चित्र
शुद्धसत्व बसु

हाशिए के चित्र
आदित्य भगत,
अमरप्रीत,
अर्शिता,
शौर्य सभरवाल

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी
मिताली अहीर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

वितरण
झनकराम साहू

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव

एक प्रति :	30.00	-	व्यक्तिगत
	50.00	-	संस्थागत
वार्षिक :	300.00	-	व्यक्तिगत
	500.00	-	संस्थागत
तीन साल :	800.00	-	व्यक्तिगत
	1350.00	-	संस्थागत
आजीवन :	4000.00	-	व्यक्तिगत
	6000.00	-	संस्थागत

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स के वित्तीय सहयोग से विकसित

सभी डाक खर्च हम देंगे।
चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं। भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोनः (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्सः (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

हवाएँ

अरुण कमल

कल एक अजीब मेहमान आए। मैंने जब एक गिलास पानी उनके सामने रखा तो वो बिगड़ गए। बोले, "बच्चा, पानी नहीं, मुझे एक गिलास हवा दो।" मैं हैरत में पड़ गया। वो मैं कैसे दूँ? एक गिलास हवा! फिर उन्होंने कहा, "मैं तो बस हवा पीकर रहता हूँ। बहुत हुआ तो कभी-कभार एक लोटा पिसा हुआ बादल।"

लेकिन हवा को तो किसी ने देखा नहीं। बड़े से बड़ा सम्राट भी आज तक हवा को पकड़ नहीं सका। कहते सब हैं कि हवा चल रही है। हवा बह रही है। हवा बन्द है। हवा की खोज़ में मैं निकल पड़ा। चारों तरफ शान्ति थी। धूप थी। ऊपर आसमान था। साफ। नीला। जैसे टेलिविज़न का पर्दा जब कोई फिल्म न चल रही हो। हरी घास थी। ऊँचे-ऊँचे पेड़ थे। खामोश। तभी मैंने देखा पेड़ों की फुनगियाँ हिल रही थीं। सामने नदी थी। पानी बह रहा था पानी की सतह उठ-गिर रही थी। कभी कोई मछली छपकती। दूर एक नाव थी। उसका पाल फूला हुआ था। अचानक पन्ने गिरने लगे। पेड़ बजने लगे। धूल उठने लगी। धूल उड़ने लगी। पानी में लहरें बोलने लगीं। मेरे केश लहराने लगे मानो मैं भी कोई पेड़ होऊँ। आसमान परिन्दों से भर गया। उनके पंख फैले हुए। पलकों की तरह झपकते। और कोई मुझे सामने से रोक रहा था। यही तो हवा है चारों तरफ। मेरी साँस भी तो हवा रोक रही थी। यही तो हवा है चारों ओर। मेरी साँस भी तो हवा है। हवा लगातार मेरे भीतर जा रही है। फिर बाहर आ रही है। हमेशा। बिना रुके। कभी तेज़। कभी धीमी। नींद में भी। किसी को सोते हुए देखो तो लगता है हवा उसे कैसे भीतर से हिला रही है। एक बच्चा भी हवा के बाहर-भीतर चलने से हिल रहा है। यही हवा का चलना, साँस बनना, ही जीवन है। प्राण है। जहाँ हवा नहीं है वहाँ जीवन भी नहीं है।

चप्पे-चप्पे हवा
हवा तिल-तिल में रहती है
हवा साँप के साथ
साँप के बिल में रहती है

तब मुझे याद आया कि हमारे फेफड़ों पर तीन हाथियों के बराबर हवा का दबाब और भार है। तब याद आया कि हाथी चलते हैं तो हाथी के बराबर हवा हटती है और उतनी जगह खाली हो जाती है। फिर भर जाती है। विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास में पढ़ा था। फिर याद आया – हवा का गेंद के ब्लैडर में भरना। साइकिल की ट्यूब में भरना। जैसे-जैसे हवा भरती है ट्यूब फूलती जाती है और नीचे से धूल छिटकती है यानी हर पहिए में हवा है। बिना हवा के न तो साइकिल चलेगी न बस न ट्रक। और गेंद भी उछल नहीं सकती। हर गेंद में हवा बन्द है। यानी हम हवा बाहर से लेकर ट्यूब में रख देते हैं। लेकिन हवा तो बेचैन रहती है। फिर बाहर आ जाती है। तब हम फिर हवा उठाते हैं और ट्यूब में भर देते हैं। गेंद में भर देते हैं।

यह पूरी पृथ्वी और आकाश – यह भी तो एक गेंद है जिसमें हवा भरी है। और हवा सबको चला रही है। हवा समुद्र के पानी में भी दौड़ रही है। पानी की लहरों को उठाती। गिराती। हवा धूल में भी है। गोल-गोल नाचती धूल के बवण्डरों में। और कभी-कभी गुस्से से चिंघाड़ती। तेज़ हवा। अँधड़। तूफान। सब कुछ को तहस-नहस करती। पता नहीं इतनी हवा कहाँ छिपी थी! इतनी हवा आती कहाँ से है? यह हवा बनती कहाँ है? एक

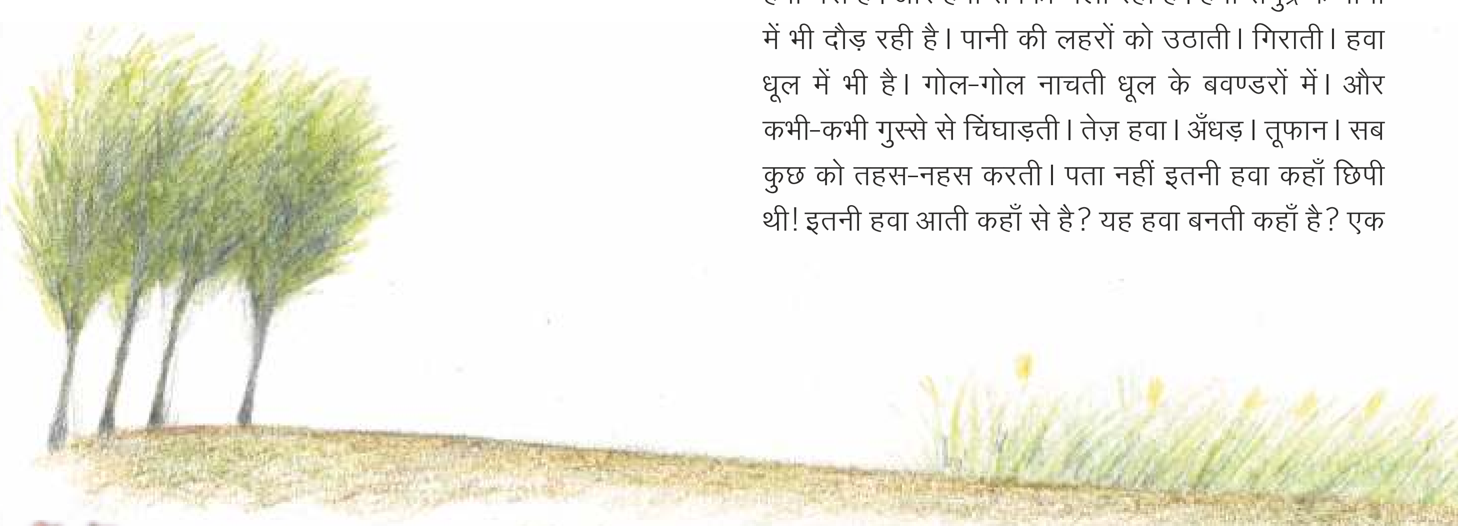

बार अण्डमान-निकोबार के एक द्वीप पर खूब घने जंगलों को दिखाकर एक फौजी अफसर ने कहा था – जो हवा आप तक जाती है वह यहीं बनती है। ये द्वीप और ये वन ही हवा के घर हैं। और हवा के कारखाने मैं भी अपने शहर में लगाऊँ और ढेर-सी हवा बोरों में, थैलों में भर-भर कर दोस्तों को भेंट करूँ। नहीं...नहीं, पानी की बोतलों की तरह नहीं, बेचने और मुनाफे के लिए नहीं। बस ऐसे ही प्यार से। मेरे कस्बे में एक बहुत बूढ़े आदमी के पास एक मशीन थी जिसमें एक तरफ चुटकी भर चीनी डालकर हैंडिल घुमाने से दूसरी तरफ खूब बड़ा लाल हवा का गोला निकलता जिसे हम हवा-मिठाई कहते। हवा की मिठाई। जो दबाते ही पिचक जाती। इतनी रोंओं भरी हवा, इतनी लाल, इतनी मीठी!

गर्मियों में सेमल के फाहे उड़ते। बरसात में पानी के बुलबुले। हर बुलबुले में हवा बन्द है। खुद हवा में हवा है। हवा बोलते ही हवा जितनी हवा मुँह की भाप से बाहर आती है। इससे हलका कोई दूसरा शब्द हमारी भाषा में नहीं है। इतनी कम हवा से बना हुआ शब्द – हवा। एक चूज़े की तरह। जो हवा से बना हुआ लगता है। बाँसुरी से निकलती हवा की तरह। बाँसुरी की हवा को यहाँ-वहाँ दबाकर, छेदकर इतनी मीठी धुन निकलती है। यह हवा का संगीत है। बाँस के वन से आती हवा की झँकार। और हर घर, हर महल हवा का ही तो महल है। सारे महल हवा में ही बनाए जाते हैं। हवा को खास तरह से काट-तराशकर जैसे कि हवा संगमरमर हो। और हर ध्वनि हवा की ही आकृति है। हवा की तराश। हवा की पीठ पर सवारी। मैं बहुत चाहता हूँ, चारों तरफ का शोरगुल मुझ तक न आए। सारी खिड़कियाँ-दरवाज़े बन्द कर देता हूँ। फिर भी आवाज़ आती है। आवाज़ हवा के सहारे आती है। ऐसा कोई कमरा हो जहाँ भीतर की हवा भीतर और बाहर की बाहर रहे? जैसे पानी के बाँध हैं, प्रकाश के बाँध हैं। वैसे ही क्या कहीं कोई हवा का बाँध है? हवा तो हर दीवार को फाँद जाती है। यहाँ तक कि हर जाल में हवा है।

फिर भी मैंने आज तक हवा को देखा नहीं। कितना अच्छा होता अगर हवा भी कई रंगों की होती। मैदानों की हवा, पहाड़ों और समुद्र की हवा – हर हवा का अलग-अलग रंग होता। और हर साँस का अलग-अलग रंग होता। जैसे-जैसे मन के भाव बदलते वैसे-वैसे साँस का रंग बदलता। गुस्से में लाल, नींद में नीला, प्रेम में हरा। और कितना अच्छा होता मैं हर महीने हवा बदलने अलग-अलग जगहों पर जाता। हवा बदलना मतलब फेफड़ों में, रक्त में नई हवा भरना। एक बार मैं कश्मीर में पूरा एक महीना श्रीनगर में चिनार के बाग में रहा और पूरे शरीर की हवा बदलकर लौटा। वहाँ हवा इतनी हलकी, इतनी पंखदार थी कि कई बार साँस लेते हुए शरीर उड़ता हुआ लगता। केरल के तट पर हवा इतनी धुली हुई और पवित्र थी कि मन में अच्छे विचार आते। और पौड़ी के देवदार वन की हवा, शिमला के देवदार वन की हवा मेरे शरीर को निथार देती। मेरे गाँव के धान के खेतों और आम के बगीचों की हवा – तो मुझे पहचानती है। जैसे मेरा रोम-रोम पहचानता है। इतनी पतली, इतनी नम्र। हर हवा पर वहाँ के जीवों और वनस्पतियों के निशान हैं। हवा सब में है और सब हवा में हैं। हम सब हवा की ही सन्तान हैं। यहाँ से वहाँ घूमते। बड़ी-बड़ी पवन चक्कियाँ भी हैं हवा की बिजली को जमा करतीं। हर जीव एक पवन चक्की है।

मैंने एक गिलास लिया और अपने मेहमान के आगे रखते हुए कहा, "यह रही एक गिलास हवा।"

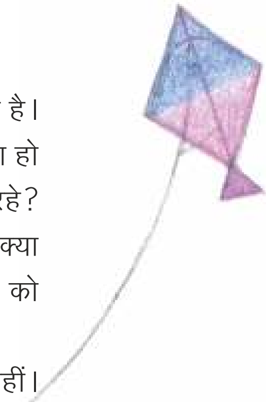

न आई अबके मुट्ठी में
समझना तुझसे कुट्टी मैं

यशस्वी मंत्री, पाँचवीं, डी.पी.एस कोयम्बतूर

रोहित गुप्ता, नवीं, विद्या ज्ञान स्कूल, सीतापुर, उ.प्र

पहले पाँच

बोलीरंगोली

दोस्तो,

इस बोली रंगोली को इस बार भी तुमने बखूबी समझा। अर्थों का एक गुच्छा मिला तुम्हारे चित्रों में।

गुलज़ार साब के पसन्दीदा पाँच चित्र पेश हैं।

इन सभी को उपहार में चकमक की एक साल की सदस्यता मिलेगी। चौदह चित्र और भी हैं जो हमें पसन्द आए। इन्हें भी चकमक के आगामी छह अंक मिलते रहेंगे।

अप्रैल अंक की कविता सुनोः

अच्छे भले थे, पूरे थे हर बात में मगर
आइने में देखा तो दो टुकड़े हो गए

जनवरी, फरवरी, बचपन ही से
बहन-भाई से लगते हैं
ठण्ड में मुँह से धुआँ उड़े तो
लगता है कि लड़ते हैं!

- गुलज़ार

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 14 मार्च तक मिल जाएँ। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना। हमारा पता है -

चकमक
एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल -16
(फोन - 09425010115)

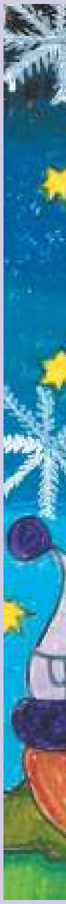

प्रशान्त सिंह, नवीं, विद्या ज्ञान स्कूल, सीतापुर, उ.प्र

अदिति साही, सातवीं, डी.सी. मॉडल सीनियर
सेकण्डरी स्कूल, पंचकुला, हरियाणा

राहुल श्रीवास्तव, छठी, नेशनल बाल भवन, नई दिल्ली

सिकन्दर के दस सवाल

प्रियंवद

सिकन्दर के भारत पर आक्रमण और पुरु (पोरस) के बारे में हम सब थोड़ा-बहुत जानते हैं! इस पर उन ग्रीक (युनानी) इतिहासकारों ने लिखा है जो सिकन्दर के साथ भारत आए थे। भारत में किसी ने कुछ नहीं लिखा। इन इतिहासकारों से हमें कुछ बहुत रोचक जानकारियाँ मिलती हैं।

कहते हैं प्लूटार्क दुनिया का पहला प्रमाणिक जीवनी लेखक है। उसका जन्म 46 ईस्वीं में युनान में हुआ था। मृत्यु 120 ईस्वीं में हुई। उसने सिकन्दर की भी जीवनी लिखी है। इसमें सिकन्दर के भारत आक्रमण का भी वर्णन है। यहाँ जो बातें हम तुमसे करेंगे उनका आधार यही जीवनी है...

सिकन्दर ने ईसा पूर्व 327 को बसन्त के आसपास भारत पर आक्रमण किया। उसके सामने पहला बड़ा राज्य गांधार पड़ा। इसकी राजधानी तक्षशिला थी। तक्षशिला शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र था। इसके विश्वविद्यालय का उल्लेख हमें मिलता है, पर हम इसकी ऐतिहासिक सच्चाई के बारे में निश्चित नहीं जानते। कहते हैं चाणक्य यहीं शिक्षक था। सिकन्दर के आक्रमण के समय वह तक्षशिला में था। तक्षशिला आज के अपने पाकिस्तान के रावलपिण्डी शहर के 20 मील उत्तर-पश्चिम में था। इसका राजा आम्भि था। प्लूटार्क ने इसकी बुद्धिमत्ता की तारीफ की है। कहते हैं आम्भि का राज्य मिस्र से भी बड़ा था। आगे बढ़ने से पहले, ध्यान देना ज़रूरी है कि जब भी भारत में देशद्रोहियों की बात की जाती है, तो पहला नाम आम्भि का ही आता है, जिसने पोरस पर आक्रमण करने में सिकन्दर की मदद की थी। आम्भि ने जब सिकन्दर के आक्रमण की बात सुनी तो उससे मिलने आया। उसने सिकन्दर से पूछा, "हम एक दूसरे से युद्ध क्यों करें? तुम यहाँ इतनी दूर हमसे पानी या जीवन की दूसरी ज़रूरी चीज़ें छीनने नहीं आए हो। ये ही वे चीज़ें हैं जिनके लिए समझदार आदमियों को भी युद्ध करना पड़ता है। और दूसरी चीज़ें जैसे धन या ज़मीन की बात कहें तो अगर वे मेरे पास तुमसे ज़्यादा हैं तो मैं खुशी से तुम्हें देने को तैयार हूँ और अगर मेरे पास कम हैं तो तुम मुझे जो दोगे मैं उससे इंकार नहीं करूँगा।"

सिकन्दर यह सुनकर बहुत खुश हुआ। उसने आम्भि का हाथ अपने हाथों में लिया और कहा, "शायद तुम सोच रहे हो कि तुम्हारे इन विनम्र शब्दों और सज्जनता के कारण हमारी मुलाकात बिना युद्ध के समाप्त हो जाएगी! नहीं, तुम इस तरह खुद को मुझसे श्रेष्ठ सिद्ध नहीं कर पाओगे। मैं तुमसे आखिरी समय तक लड़ूँगा, केवल इस बात के लिए कि मैं तुमको अधिक उपहार दूँगा। मैं उदारता और सज्जनता में तुमको जीतने नहीं दूँगा।"

इसके बाद युद्ध तो क्या होता। सिकन्दर को आम्भि से बहुत उपहार मिले। उसने उससे ज़्यादा आम्भि को दिए। इसके बाद दोनों की गाढ़ी मित्रता हो गई।

प्लूटार्क बताता है कि पोरस से अपने युद्ध के बारे में सिकन्दर ने स्वयं अपने पत्रों में लिखा है। इस युद्ध के बारे में हम सबने पढ़ा है। इसलिए हम यहाँ तब की बात करेंगे

जब पराजय के बाद पोरस को सिकन्दर के सामने लाया गया। सिकन्दर ने उससे पूछा, “तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाए?”

“एक राजा की तरह।” पोरस ने कहा।

इसके बाद सिकन्दर ने जब पूछा कि तुम्हें कुछ और कहना है? उसे उत्तर मिला “ये शब्द कि ‘एक राजा की तरह’ इसमें शामिल सब है।” सिकन्दर ने पोरस का राज्य लौटा दिया। उसने अपने कुछ जीते हुए छोटे राज्य भी पोरस को दे दिए। ये करीब 15 राज्य थे। इनमें बहुत से शहर और गाँव थे। बाद में पोरस ने अनेक युद्धों में सिकन्दर की मदद की।

ज़रा सोचो, यदि सिकन्दर की मदद करने के लिए आम्भि को देशद्रोही कहा जाता है, तो बाद में जब पोरस ने सिकन्दर की हर तरह से मदद की, तो क्यों पोरस देशभक्ति और वीरता का प्रतीक बना हुआ है और

इसी युद्ध में सिकन्दर का सबसे प्यारा घोड़ा “ब्यूसीफेलस” मारा गया। युद्ध के मैदान में तो नहीं, पर कुछ समय बाद। ज़्यादातर इतिहासकार बताते हैं कि वह युद्ध के दौरान लगे घावों से मरा। एक इतिहासकार का कहना है कि वह अपनी बड़ी आयु के कारण मरा। उस समय तक वह 30 साल का हो चुका था। वह सिकन्दर के पास शुरू से था और उसे बहुत प्यारा था। सिकन्दर इतना दुखी हुआ कि उसने कुछ दिनों तक खाना नहीं खाया। बाद में उसने उसकी याद में वितस्ता (झेलम) नदी के किनारे एक शहर बसाया और घोड़े के नाम पर उसका नाम “ब्यूसीफेलस” रखा।

सिकन्दर के बारे में एक और बेहद रोचक घटना है। उसने 10 भारतीय दार्शनिकों (प्लूटार्क का आशय ब्राह्मणों से है) को पकड़ लिया। वे भारत में सिकन्दर का शुरू से ही बहुत विरोध कर रहे थे और उन्होंने लोगों को उसके विरुद्ध संगठित किया था। उकसाया था। चाणक्य के बारे में हम जानते हैं। सिकन्दर ने सुन रखा था कि ये दार्शनिक प्रश्नों के बहुत छोटे, नपे-तुले और तत्काल उत्तर देने में निपुण होते हैं। उसने इसको परखना चाहा। उसने कहा कि वह हरेक से एक प्रश्न पूछेगा और उस व्यक्ति को सबसे पहले मृत्युदण्ड देगा जिसका उत्तर सबसे खराब (worst) होगा। इसके बाद उसी क्रम में सबको मार देगा। उनमें से जो सबसे बूढ़ा था उसे सिकन्दर ने इस प्रतियोगिता का निर्णायक बनाया। इसके बाद परीक्षा इस तरह शुरू हुई।

(शेष भाग पेज 11 पर)

एक था हाजी एक था नाजी

स्वयं प्रकाश

चित्रः अतनु राय

हाजी ने मिठाई की दुकान खोली और उस पर बड़ा-सा बोर्ड लगवाया। उस पर लिखा था, "हमारे यहाँ ताज़ा मिठाई मिलती है।"

नाजी आए तो उन्होंने सबसे पहले बोर्ड को देखा और बोले, "ये तुमने बहुत अच्छा किया कि कोई नाम नहीं रखा। नाम में बहुत लफड़ा है। कभी-कभी तो उसको लेकर दंगे तक हो जाते हैं। लेकिन एक बात बताओ ये 'हमारे यहाँ' का क्या मतलब है? अब तुम्हारे यहाँ बोर्ड लगा है तो तुम्हारे यहाँ ही हुआ न! कोई ऐसा बोर्ड तो लगाता नहीं कि 'हमारे पड़ोसी के यहाँ ताज़ा मिठाई मिलती है' या 'रामस्वरूप के यहाँ सिले-सिलाए कपड़े मिलते हैं!'"

"तो क्या करें?" हाजी ने पूछा।

"'हमारे यहाँ' को हटवा दो।"

"हमारे यहाँ" हट गया। रह गया "ताज़ा मिठाई मिलती है।"

दो रोज़ बाद नाजी फिर आए और बोले, "भई, ये 'ताज़ा' से थोड़ा कन्फ्यूज़न हो रहा है। खामखाँ का शक पैदा हो रहा है। अब ऐसा तो है नहीं कि रात को सारी बची हुई मिठाई तुम फेंक देते हो और सुबह सब ताज़ा बनाते हो! कोई पूछ लेगा यही बात तो फँस जाओगे। ऐसा करो ये 'ताज़ा' हटवा दो।"

तो अब "ताज़ा" भी हट गया। रह गया "मिठाई मिलती है।"

दो-तीन रोज़ बाद नाजी फिर आए और बोले, "मेरे दिमाग में एक बात आई के भई मिठाई की दुकान है तो उसमें मिठाई ही तो मिलेगी! कोई मोटरसाइकिल के स्पेयर पार्ट्स तो मिलेंगे नहीं! है कि नहीं! ऐसा करो, 'मिठाई' मिटवा दो।"

तो "मिठाई" भी मिट गया। अब रह गया "मिलती है।"

(शेष भाग पेज 21 पर)

सिकन्दर के दस सवाल

(पेज 9 का शेष भाग)

पहला दार्शनिक

प्रश्नः किनकी संख्या ज़्यादा है – जीवित या मृत की?

उत्तरः जीवित क्योंकि मृत का अस्तित्व नहीं है।

दूसरा दार्शनिक

प्रश्नः कौन अधिक विशाल प्राणियों को पालता पोसता है – धरती या समुद्र?

उत्तरः धरती, क्योंकि समुद्र इसी का एक हिस्सा है।

तीसरा दार्शनिक

प्रश्नः जानवरों में सबसे चालाक कौन है?

उत्तरः वह जानवर जिसे मनुष्य अभी तक नहीं खोज पाया है।

चौथा दार्शनिक

प्रश्नः तुमने “सब्बा” लोगों को विद्रोह के लिए क्यों उकसाया?

उत्तरः क्योंकि मैं चाहता था कि वे सम्मान के साथ या तो जिएँ या मरें।

पाँचवाँ दार्शनिक

प्रश्नः पहले क्या बना – दिन या रात?

उत्तरः दिन, एक दिन पहले।

जब दार्शनिक ने देखा कि सिकन्दर इस उत्तर से चकित रह गया है, उसने जोड़ा – गहरे प्रश्न निश्चित ही गहरे उत्तरों को जन्म देंगे।

छठा दार्शनिक

प्रश्नः कोई व्यक्ति कैसे स्वयं को सबके प्रेम का पात्र बना सकता है?

उत्तरः यदि उसके पास सर्वोच्च ताकत है फिर भी वह डर पैदा नहीं करता।

सातवाँ दार्शनिक

प्रश्नः कैसे एक मनुष्य ईश्वर हो सकता है?

उत्तरः वह करके जो एक मनुष्य नहीं कर सकता।

आठवाँ दार्शनिक

प्रश्नः क्या अधिक शक्तिशाली है – जीवन या मृत्यु?

उत्तरः जीवन क्योंकि यह बहुत से दुखों को सहन करता है।

नवाँ दार्शनिक

प्रश्नः किसी मनुष्य के लिए कब तक जीना श्रेष्ठ है?

उत्तरः तब तक, जब तक कि वह मृत्यु को जीवन से बेहतर नहीं समझता।

अन्त में सिकन्दर निर्णायक की तरफ मुड़ा और उससे अपना निर्णय सुनाने को कहा। उसने निर्णय दिया कि हरेक ने अपने पहलेवाले से खराब उत्तर दिया।

“तब तो” सिकन्दर ने कहा “सबसे पहले तुम्हें मृत्युदण्ड देना चाहिए जिसने ऐसा निर्णय दिया।”

“यह उचित नहीं है,” निर्णायक ने कहा, “यदि आपका आशय वही है जो आपने कहा था कि आप उसे सबसे पहले मृत्युदण्ड देंगे जो सबसे खराब उत्तर देगा।”

(यहाँ “खराब” (worse) और “सबसे खराब” (worst) का फर्क है।)

सिकन्दर बहुत खुश हुआ। उसने दसों दार्शनिकों को उपहार देकर छोड़ दिया।

क्या गणित के हिसाब से निर्णायक का उत्तर ठीक था? क्या दसवाँ सबसे खराब उत्तर देनेवाला नहीं ठहरता? पहले का उत्तर किससे खराब था?

संजीव

आइडिया

यकीन करें, न करें, ये जो दो व्यक्ति बालाजी मन्दिर की सीढ़ियों पर बन्दरों की तरह उदास भाव से बैठे हैं, जिनके नाम रामैया और सोमौया हैं, न तो मन्दिर के पुजारी हैं, न राह के भिखारी। अलबत्ता थे कभी दोनों ही, दोनों के दोनों। पर वह पाँच साल पहले की बात है। पूरी कथा जानने के लिए आपको पाँच साल पीछे लौटना होगा जब बेरोज़गारी में रामैया और सोमैया सड़क नापा करते थे।

आसमान से नहीं टपके थे रामैया-सोमैया। आसमान से तो टपके थे बन्दर। बन्दर के हाथों टपका था अखबार और अखबार के हाथों टपका था टेण्डर। है न मज़े की बात! पर थी कुछ ऐसी ही बात जब पाँच साल पहले इस पत्थर घाटी के वानरों से भरे इलाके में एक वानर अपनी तमाम चालकता के बावजूद ट्रक की चपेट में आ गया। तभी संयोगवश एक ओर से प्रकट हुए रामैया, दूसरी ओर से सोमैया और बीज से प्रकट हुई उनकी तकदीरः बड़े धूमधाम से वानर को हनुमानजी बताकर अन्तयेष्टि की गई। फिर सरकरी ज़मीन पर कब्ज़ा करके, ट्रक और हर राहगुज़र से चन्दा लेकर एक मन्दिर बनाया गया। प्रचार यह किया गया कि पत्थर घाटी के हनुमानजी अत्यन्त जाग्रत देवता हैं, जो माँगो, मिलता हा।

बालाजी का यह मन्दिर दिन दूरी रात चौगुनी गति से खड़ा होने लगा और चढ़ावे की परत से रामैया और सोमैया के बदन पर चढ़ने लगी चिकनाई की परत। बात यहीं नहीं रुकी। दोनों ने बगल में और दो-दो एकड़ ज़मीन कब्ज़ियाकर उसे बाकायदा धार्मिक केन्द्र या "हब" के रूप में विकसित करने की सोच ली।...

चूँकि इस क्रिया में काफी पैसा की ज़रूरत थी, सो वे दिन-रात पैसे उगाहने की एक से बढ़कर एक शातिर चालों में मशगूल रहते। इन्हीं शातिर चालों में से एक थी वह चाल जिसकी हम चर्चा करने जा रहे हैं।

उतरते बसन्त का ऐसा ही कोई ढलता दिन था। पत्थर घाटी में बन्दर उधम मचा रहे थे। रामैया और सोमैया मन्दिर के बाहर दो खाटों पर लेटे शाम की आरती का इन्तज़ार कर रहे थे। मना रहे थे कि कोई मोटा सेठ आए, आरती में भाग ले, उसकी अटैची छूट जाए और अटैची में हज़ार-हज़ार के हज़ारों गुलाबी नोट हों। तभी एक बन्दर द्वारा दूसरे बन्दर को खदेड़े जाने के क्रम में ऊपर से कुछ गिरा। वह एक अखबार का टुकड़ा था। रामैया ने उठाकर देखा और खुशी से उछल पड़ा। कहते हैं, खुदा जब देता है, छप्पर फाड़कर देता है।

सोमैया ने अखबार खोलकर देखा, "बन्दर पकड़ने का टेण्डर था। बन्दरों से त्रस्त तीस-एक क्षेत्रों से बन्दरों को पकड़कर किसी अभ्यारण्य में छोड़ आने का टेण्डर! सरकार ने मोटे तौर पर एक प्रारूप भी तय कर दिया था – कि बन्दर की खुराक के लिए प्रतिदिन दो-दो केले, सौ-सौ ग्राम चने आदि-आदि एक बन्दर पर अस्सी रुपए खर्च करने का प्रावधान था।"

"यार, अस्सी रुपए कम नहीं हैं क्या?" रामैया कुरमुराया।

"पत्थर पड़े हैं अक्ल पर, अरे केले की साइज़ तो नहीं लिखी न, न ही चने-वने की। ज़रूरी है कि टॉप ग्रेड के केले और काबुली चना ही हो...!" सोमैया ने समझाया

"लेकिन उतने बन्दर पकड़ पाएँगे हम?"

"सौ के लगभग तो अपनी पत्थर घाटी में ही हैं, बाकी बहुत-से मन्दिरों को ऐसे ही समझ लो। एक बन्दर से पचास भी बचे तो पचासेक हज़ार तो बैठे-बिठाए एक ही क्षेत्र से। ऐसे तीस क्षेत्र हैं। संख्या और भी बढ़ सकती है।" यह कहते हुए सोमैया ने होठों पर जीभ फेरी। "खुद बालाजी महाराज ने यह सौभाग्य हमें दिया है कि अभागो, दिन रात हाय पैसा, हाय पैसा करते रहते हो रुपए पतझड़ के पत्तों की तरह झड़ रहे हैं, लो बटोरो, कितना बटोर पाते हो?"

रामैया ने "किन्तु" में "परन्तु" जोड़ा, "तुमने कैसे मान लिया कि ये टेण्डर तुम्हें ही मिलने जा रहे हैं?"

मामूली बात है। एकदम कम का टेण्डर भरेंगे। धार्मिक मसला है। हमारी-तुम्हारी तरह कम ही लोगों का जिगरा होगा इस मधुमक्खी के छत्ते में हाथ डालने का। रामैया चुप हो गया। शाम की आरती का समय हो चला था। कुछ गाड़ीवाले आ गए थे। परन्तु रमैया की ज़ुबान पर था, "सोमैया, तूने कभी कोई बन्दर पकड़ा है?"

"नहीं। और तूने...?"

"मैंने क्या, मेरे बाप ने भी नहीं।"

"तो...?"

"तो क्या? बन्दर न तुम्हें पकड़ना है, न मुझे! बन्दर पकड़ेगी एक टीम। उस टीम में बन्दर पकड़नेवाले, उनकी देखभाल करनेवाले, एक जालीदार पिंजरा, फन्दा होगा, खाने-पीने, स्वास्थ्य, सफाई, ट्रांसपोर्टेशन, सरकारी कागज़ात, सम्पर्क सुरक्षा...सब होंगे। कल सबसे पहले टेण्डर की कार्रवाई, फिर टीम गठित करने की होगी।"

"पैसा?" रामैया ने सवाल टाँका।

"दो-दो एकड़ खेत और मन्दिर की प्रापर्टी तो हुई है फिर पैसों से पैसा आएगा न? आखिर बालाजी का काम है, हमारा अपना निजी स्वार्थ का तो नहीं।" सोमैया ने समाधान दिया।

"सो तो है।" रामैया सन्तुष्ट हुआ। रात भर उनके सपनों में बन्दर उछलकूद मचाते रहे। रात भर रुपए पत्तों की तरह झरते रहे...। ऐसी कई रातें, कई दिन...। आखिर बालाजी की कृपा हुई। टेण्डर उनके नाम खुल गया। टेण्डर नहीं लॉटरी!

टीम भी जोड़ ली दोनों ने। फन्दे-बन्दे भी आ गए। जालीदार ट्रक-व्रक भी। तय हुआ कि इधर बन्दर पकड़े जाते रहें, उधर उन्हें जंगलों में छोड़ आने का काम भी चलता रहे।

टीम ने बन्दरों की पहली खेप पकड़ने का अभियान छेड़ा। बन्दरों ने दाँत निकालकर बन्दर घुड़की दी। रामैया-सोमैया ने भी दाँत निकालकर घुड़की का जवाब दिया। तभी एक गड़बड़ी हो गई – टीम का कोई सदस्य लड्डू खाने की बेवकूफी कर बैठा। एक बन्दर ने उसे कसकर चाँटा रसीदकर लड्डू छीन लिया। कुछ एक को बन्दरों ने काट भी लिया। ऐसी कई प्रारम्भिक दिक्कतें आईं पर धीरे-धीरे वे इन पर विजय प्राप्त करते गए। अब वे इस कला में विशेषज्ञ बनते जा रहे थे। बन्दरों को भेजने की पहली खेप तैयार हुई। दल के लोग भी बैठे, बन्दर भी।

"इन्हें कहाँ छोड़ा जाएगा साहब?" ट्रक के ड्राइवर ने पूछा।

"पचास किलोमीटर दूर। कहीं भी...?" सोमैया ने कहा।

तभी एक गड़बड़ी हो गई टीम का कोई सदस्य लड्डू खाने की बेवकूफी कर बैठा।

चित्रः तापोशी घोषाल

बन्दरों की पहली खेप लेकर ट्रक सारी रात भटकता रहा। सुबह वापस फिर पत्थर घाटी।

सोमैया ने मसले को जितना आसान समझा था, वह उतना ही कठिन सिद्ध हुआ। ट्रक जहाँ भी जाता, शोर मच जाता, यहाँ नहीं, यहाँ नहीं। कई तो खदेड़ देते। बन्दरों की पहली खेप लेकर ट्रक सारी रात भटकता रहा। सुबह वापस फिर पत्थर घाटी।

"वैसे तो सभी बनते फिरेंगे हनुमानजी के खाँटी पुजारी। लेकिन इन बन्दरों को स्वीकारने को कोई तैयार नहीं। क्या ज़माना आ गया है!" रमैया ने थकी आवाज़ में कहा।

"घोर कलयुग है महाराज!" ट्रक ड्राइवर ने कहा।

"चुप बे!" रामैया चिढ़ गया।

"चिढ़ने से तो समस्या हल होने वाली नहीं। सवाल है, इन बन्दरों को छोड़ा कहाँ जाए?" रामैया ने कहा।

"चाड़ोबा के जंगल में, यहाँ से 100 किलोमीटर दूर...?"

"पर वहाँ के वन अधिकारी ने पहले ही हाथ खड़े कर दिए हैं।"

"तुमने पूछा था?"

कहीं नहीं, आसपास के तीनों अभ्यारण्यों और वन अधिकारियों से पूछ चुका हूँ। सबों का एक-सा जवाब!

नहा-धोकर वे सुबह की पूजा आरती करने लगे तभी सोमैया को जैसे इलहाम हुआ – "आइडिया!"

रोमैया ने आरती रोककर पूछा, "जल्दी बता, मेरे प्राण अटके पड़े हैं।"

"बालाजी की इस सेना को समन्दर पार जाना होगा एक बार फिर...।"

"मतलब...?"

"मतलब यह कि अफ्रीका का एक देश इस बात पर सहमत हो गया है कि जितने भी बन्दर हैं वह लेने को तैयार है। यानी वह समस्या तो हल हुई। अब छोटा-सा काम रह गया है। वैगनों में सारे बन्दरों को पकड़कर मुम्बई के डॉकयार्ड में रेल से पहुँचाना जहाँ से समुद्री जहाज़ उन्हें वहाँ छोड़ आएगा। थोड़ी लिखा-पढ़ी भी हमें करनी पड़ेगी।"

"हाथी पार हो गया तो दुम नहीं अटकेगी।" रामैया ने बाकी आरती को पूरा करते हुए अपने पार्टनर मित्र को आश्वस्त किया।

"लेकिन...!" कथा में वही एक लेकिन आ खड़ा हुआ। माने वो क्या कि किन्तु में परन्तु! हाथी की दुम अटक ही गई।

मुम्बई के एक अधिकारी ने टके-सा सवाल फेंक दिया, "इन बन्दरों का अफ्रीकावाले क्या करेंगे?"

"हमें तो आम खाने से मतलब है, पेड़ गिनने से नहीं।"

"गिनना पड़ता है... वे इसे अपने बाघों को खिलाएँगे।"

"नहीं।" रामैया की चीख निकल गई।

(शेष भाग पेज 29 पर)

माथापच्ची

पहेली: मनीष जैन
चित्र: मानस जैन

खज़ाने के चोर

यह कहानी हज़ार वर्ष पहले की है जब भारतवर्ष दस प्रान्तों में बँटा हुआ था। हर हफ्ते हरेक प्रान्त से सौ ग्राम की सौ मोहरें एक थैले में राज्यकर के रूप में राजधानी पाटलिपुत्र में आती थीं। इसे सेना के घुड़सवार खज़ाने में जमा करते थे। इसी पैसे से राष्ट्र का खर्च चलता था।

एक दिन जब थैले खज़ाने में जमा हो रहे थे तो एक घायल घुड़सवार तेज़ी-से आया और बोला कि एक प्रान्त का मंत्री धोखा कर रहा है। उसने हर मोहर को घिसकर 99 ग्राम का कर दिया है। लेकिन देखने में सारी मोहरें एक-सी ही दिखती हैं। इसलिए थैले खोलकर मोहर देखने से जाली थैले का पता नहीं चल सकता है। इससे पहले कि वह उस प्रान्त का नाम बता पाता वह अपने प्राण गँवा बैठा।

हर थैले को तोलकर पता लगाया जा सकता है कि कौन-सा थैला जाली है। पर कहते हैं ना कि जब बला आती है तो छप्पर फाड़ कर आती है। तो यहाँ तराजू की स्थिति ऐसी थी कि वह एक बार ही तौल सकता था।

अब तुम ही बताओ कि कैसे एक ही बार तौलने से उस जाली थैले का पता चल सके जिसकी सारी मोहरें 99 ग्राम की हैं।

एड्ड

घोंघा एक गोल रास्ते पर चलते हुए आधी दूरी तय कर लेता है। फिर वहाँ से मुड़कर तय किए रास्ते का आधा रास्ता और चल लेता है। क्या घोंघा वापिस उसी जगह पर पहुँच जाएगा जहाँ से उसने चलना शुरू किया था?

सिर पर देखा उसका मटका
मटके को घर लाकर पटका
कुछ को खाया, कुछ को फेंका
मटके का पानी भी गटका

(नारियल)

इन दिनों किन-किन पौधों पर फूल आए हुए हैं। किन्हीं पाँच के नाम बताओ।

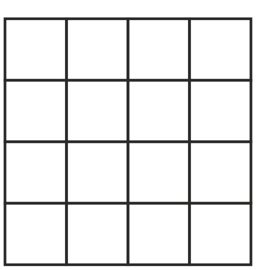

इस बड़े चौकोर के अन्दर दिए छोटे-छोटे चौकोरों को इस तरह रंगो कि 3 चौकोरों का रंग नीला, 3 का पीला, 3 का हरा, 3 का नारंगी, 3 का लाल व 4 चौकोरों का रंग बैंगनी हो। बस ध्यान रखना कि आड़ी, खड़ी या तिरछी किसी भी एक पंक्ति में एक ही रंग के दो चौकोर ना हों।

रिक्शा व ज्यामितीय गतिविधि

विवेक मेहता

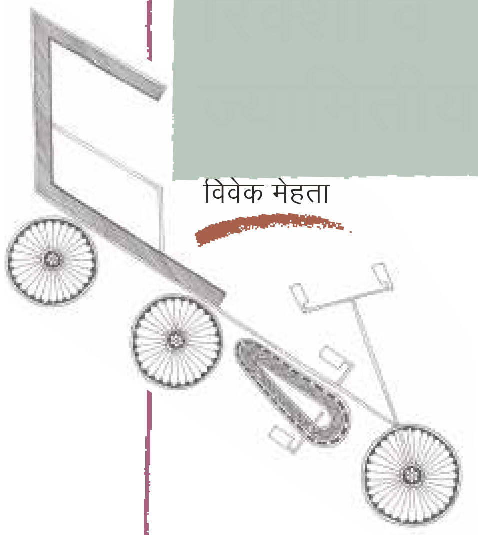

तुम्हारे हज़ारों जवाब मिले। पढ़कर समझ आया कि तुम ने इस बार भी इन गतिविधियों का खूब मज़ा लिया और कुछ नया भी सीखा।

पर पहली गतिविधि के लिए ज़रूरी था कि तुम एक तीन पहियोंवाले साइकिल रिक्शा का इस्तेमाल करते ना कि दोपहिया साइकिल या चार पहियोंवाले ठेले का। साइकिल रिक्शा मिलना मुश्किल ज़रूर होता पर जिस बात की तरफ मैं तुम्हारा ध्यान दिलवाना चाह रहा था वो उसी के साथ ही सम्भव है। तो मेरी गुज़ारिश है कि इस गतिविधि को दोहराओ। वैसे इस गतिविधि से जुड़े तुम्हारे जवाबों को पढ़कर लगा कि तुमने दोपहिया साइकिल के साथ भी कई बढ़िया खोजें की हैं – जैसे साइकिल के पिछले पहिए को हवा में उठाकर पैडल मारने से उसका आगे ना बढ़ना और साइकिल के चलने में घर्षण की भूमिका इत्यादि।

दूसरी गतिविधि थी एक चौखाना बनाकर उसके चारों भुजाओं के मध्य बिन्दुओं को जोड़कर बननेवाले नए चौखाने की पड़ताल करने की। इस गतिविधि में ज्यामिती की सुन्दरता व इसमें छिपे सिद्धान्तों को देख-समझ सकते हैं। मैंने भी तीन दफे यह किया। हर बार नया चौखाना एक समानान्तर चतुर्भुज था। यानी एक ऐसा चौखाना जिसकी आपने-सामने की भुजाएँ समानान्तर हों। तुम में से लगभग सभी को यही नतीजे मिले। तो क्या हम ऐसा कह सकते हैं कि चाहे किसी भी चौखाने से शुरुआत हो इस गतिविधि के अन्त में मिलनेवाला नया चौखाना हमेशा एक समानान्तर चतुर्भुज ही होगा? ऐसा कहने के लिए ज़रूरी होगा कि इस कथन को पक्के तौर पर सिद्ध किया जाए। ये मैं तुम पर छोड़ता हूँ। इस संकेत के साथ कि ऐसा करने के लिए ज़रूरी होगा कि तुम एक त्रिभुज के गुणों को समझो।

पिछले अंक में **एक बूँद तोड़ी** नाम की गतिविधि में तुम्हारे बेहद कमाल के चित्र मिले। शुक्रिया...तुम्हें इन्हें बनाने में जितना मज़ा आया होगा उतना मज़ा इन्हें देखने में आया। अगले अंक में उन्हें प्रकाशित किया जाएगा....

आकृति मधुकर, पाँचवीं, डीपीएस पटना

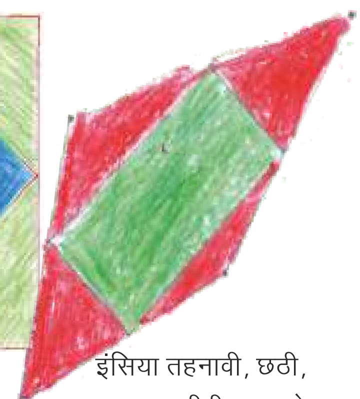

इंसिया तहनावी, छठी, डीपीएस, पुणे

- मुझे मेरे चित्र में हीरे जैसा आकार दिखा। मुझे उसमें और भी चीज़ें दिखीं। जैसे चटाई का डिज़ाइन, फोटो फ्रेम। चटाई में बैठकर हम पिकनिक मनाते हैं।... बाहरवाली आकृति तो पैरलैलोग्राम (चतुर्भुज) जैसी है, पर अन्दर वाली चौकोर आकृति में मुझे पलंग, हीरा, ट्रॉली, नाव जैसे विचित्र आकार दिखे।...मुझे पतंग दिखा। मुझे पतंग उड़ाना बहुत अच्छा लगता है।...मुझे खिड़की दिखी। खिड़की के बाहर मैं पंछियों को उड़ते देख सकती हूँ। आसमान में पंछी आज़ादी से उड़ रहे हैं।

– डीपीएस पुणे के बच्चे

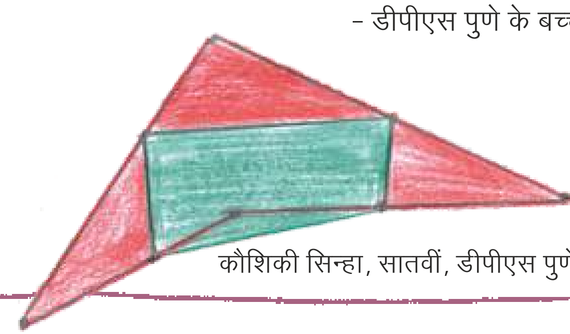

कौशिकी सिन्हा, सातवीं, डीपीएस पुणे

बहुत नाम हैं इस चित्र के
जो अच्छे लगते हैं मुझे
मैं बताऊँगा कोई तीन
तुम्हें अच्छे लगेंगे मुझे है यकीन
पहला है पलंग
जो उड़ सके हवा के संग
दूसरी है खिड़की
जहाँ से देख सकूँ मैं तस्वीर दुनिया की
तीसरा है कोई जादुई खेल
जिसे खेलने के लिए चाहिए
दिल और दिमाग का मेल

तेजस एस, आठवीं,
डीपीएस पुणे, महाराष्ट्र

ज्यामितीवाली गतिविधि में इन सब के जवाब सही थे–
विश्वास स्कूल गुड़ँगाव से राजू मालीत, सातवीं, अनु, सुजीत, ब्रजेश, साहिल, संदीप, मनीष, आशीष, शेरॉन–आठवीं, मोजीबूर रेहमान, आठवीं।
पूर्व माध्यमिक विद्यालय बेरहण्ड़ा, नरेनी, बान्दा (उ.प्र) से राहुल, सातवीं, मनोज कुमार, संदीप कुमार, सुधा, सोनू कुमार, केशकली, नेहा देवी, वन्दना गुप्ता, आठवीं और दुर्गेश, नवीं।
प्राथमिक विद्यालय समेरिया कुशल, बान्दा (उ.प्र) से मंयक तिवारी और प्रशान्त, चौथी, अभिशान्त तिवारी, पाँचवीं और गजेन्द्र कुमार, सातवीं।
डी.पी.एस, पटना से एशिका, नव्या, सौम्या, दिव्यान्शु, संजीवनी, वंशिका पाण्डे, आर्यन वेदान्त, शुभम कुमार, यश राज, अनुराग आनन्द, साक्षी, चौथी और कौशिक आनन्द, प्रियान्शी दास, पियूष, अश्रर अफरोज़, अविशी, अर्नव सिन्हा, हर्ष, नवनीत कुमार, मेहुल, सर्वज्ञ, पाँचवीं।
डी.पी.एस, लुधियाना से सहज ग्रेवाल, मान्या जलोटा, भूमिका बंसल, अनन्या गोयल, पुष्टि गुप्ता, ईशलीन, अमीषा, गुरमीत सिंह, पाँचवीं।
डी.पी.एस पुणे से केतकी, मिताली, यामिनी, सारान्श नाईक, पाँचवी, रिहेन सुरेश मनवानी, मेधा, अदिति, सयीद आकीफ, मयूराक्षी मजूमदार, ईशीका राठौर, विष्णु, छठी, वैष्णवी कोरपे, स्मृति, श्वेता रथ, शिवांगी रंजन, अर्थव खेड़कर, सातवीं, आदर्श, अनीश जैन, शान्तनु नावन्दर, वैष्णवी प्रसाद, ज़ाईना देशपाण्डे, आठवीं।

मेरी डायरी के कुछ पन्ने

रवि कुमार बाँसफोर

बात तब की है जब मैं गुरुनानक मॉडल स्कूल में चौथी क्लास में पढ़ता था। हमारी नई क्लास टीचर आई थीं। एक दिन उन्होंने मुझे कक्षा में सबसे अलग बिठा दिया। अब मैं किसी और के साथ नहीं बैठ सकता था। मुझे पता नहीं था कि वे ऐसा क्यूँ कर रही हैं पर सबसे अलग छोटा-सा टेबल और छोटी-सी कुर्सी मिलने से मेरा मन बहुत खुश था। असली बात का पता तब चला जब मैं आठवीं कक्षा में पहुँचा।

हमेशा से मेरी इच्छा रही थी कि मैं पहली बैंच में बैठूं। आठवीं में आया तो पहले दिन ही अगली बैंच पर बैठ गया। लेकिन मेरी इच्छा धरी की धरी रह गई जब मेरे क्लास टीचर कक्षा में आए। उन्होंने मुझे पहली बैंच में अपने सहपाठियों के साथ बैठा देखा तो बोले, “आज के बाद तुम कभी भी पहली बैंच में ना बैठना। हमेशा आखरी बैंच में ही बैठना।” और मुझे पीछे भेज दिया बैठने के लिए।

दूसरे दिन मैं फिर पहली बैंच में बैठा तो टीचर ने मुझे फिर उसी तरह पीछे भेज दिया। इस तरह कुछ दिनों तक चलता रहा। फिर एक दिन वे बहुत गुस्सा हो गए और मुझे खूब डाँटा। मैं उस डाँट में कोई अर्थ खोजने लगा...और तब अचानक सारे अर्थ मेरे हाथ लग गए। पता चला कि मैं एक अछूत हूँ। और अगर सुबह टीचर मेरा चेहरा देख ले तो उनका सारा दिन बरबाद हो जाएगा। इसके बाद मैं हमेशा के लिए पीछे की बैंच पर चला गया। और तब मुझे याद आई चौथी कक्षा की वो घटना। मैं समझ गया कि नई टीचर ने भी मेरे साथ यही भेद-भाव किया था। उन्हें पता चल गया था कि मैं एक हरिजन का बेटा हूँ जो मैला साफ करनेवाला परिवार से ताल्लुक रखता है।

आठवीं में तो मेरे साथ भेद-भाव ऐसा था कि मैं अपनी कॉपी चेक करने के लिए देता तो टीचर बाकी बच्चों की कॉपी चेक करते लेकिन मेरी नहीं करते थे। मेरी लिखी कोई भी दरख्वास्त स्वीकार नहीं करते थे। मुझे किसी भी खेल में भाग लेने नहीं दिया जाता था।

बारहवीं पास करने के बाद मेरी शादी कर दी गई और घर की परिस्थिति के कारण मुझे पढ़ाई छोड़कर काम करना पड़ा। मैं कम्प्यूटर हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर जानता था और साथ ही स्टैनो-अँग्रेज़ी टाइपिंग भी।

मेरे शहर में एक नया अस्पताल खुलनेवाला था जिसके इन्तज़ार में मैं था। मैंने अपने दस्तावेज़ और दरख्वास्त जमा करवाई। इसमें कम्प्यूटर व पढ़ाई के सर्टिफिकेट भी थे। मैं मन में आशा लगाए हुए था कि अच्छी नौकरी मिल जाए। कुछ दिनों बाद उन्होंने मुझे बुलवाया और कहा कि तुम्हारे लिए एक नौकरी है। जब मैंने पूछा कि किस पोस्ट के लिए है तो उन्होंने कहा कि स्वीपर (सफाई कर्मचारी) के लिए है। मैंने कहा कि मैं तो पढ़ा-लिखा हूँ तो जवाब मिला कि तुम तो बाँसफोर हो यानी हरिजन जाति के हो और हमारे पास तुम्हारे लिए यही काम है।

मैं मजबूर हो गया। घर की परिस्थिति याद आ गई और मैंने अपने पढ़े-लिखे ज्ञान को काले कपड़े में बाँधकर स्वीपर बनना स्वीकार कर लिया। मेरी तरह कई लोग हैं जो इस तरह के भेद-भाव के चलते अपना भविष्य अँधियारे में धकेल चुके हैं।

कुछ ही दिन पहले की बात है। हमारे ज़िले में एक नया मेडिकल कॉलेज खुला। उस में कॉन्ट्रेक्टर के ज़रिए नए लोग लिए गए। कहने के लिए तो यहाँ हर जाति के लोगों को स्वीपर का काम मिला। पर दूसरी जाति के लोगों को साफ-सफाई का हलका काम दिया गया। लेकिन जब बाँसफोर हरिजन काम माँगता है तो उसे भी काम तो साफ-सफाई का ही मिलता है लेकिन बाकियों की तरह नहीं। उसे कठिनाई भरे काम दिए जाते हैं। जैसे कटी लाश उठाना, बीमार का मल-मूत्र और उल्टियाँ साफ करना, खतरनाक सीवर में उतरना या साफ करना।

मैं आज एक यूनिवर्सिटी में काम कर रहा हूँ। अभी भी स्वीपर बनकर। यहाँ 95 और लोग भी यही काम कर रहे हैं। लेकिन मैला साफ करना, लैट्रीन की टँकी साफ करना और पाइप लगाना जैसे सारे काम करने के लिए सिर्फ हम दो ही लोग हैं – राजीव बाँसफोर और मैं। जब हम कहते हैं कि बाकी स्वीपर से भी यह काम करवाएँ तो वे कहते हैं वे नहीं कर सकेंगे क्यूँकि उन्हें घिन आती है। हमें यह काम करने के लिए आज से कई साल पुराना पैसा ही दिया जाता है। जब हम अपना पैसा बढ़ाने के लिए कहते हैं तो हमारी कोई नहीं सुनता है। कोई इंसान अपने घर की चीज़ों की तरह शौचालय साफ करने के लिए अच्छी क्वालिटी की चीज़ें खरीदता है तो उसकी वह काफी कीमत चुकाता है। लेकिन वही शौचालय साफ करने के लिए सस्ता स्वीपर खोजता है। बाज़ार में बिकनेवाली चीज़ें कीमती हो सकती हैं तो क्या हम नहीं?

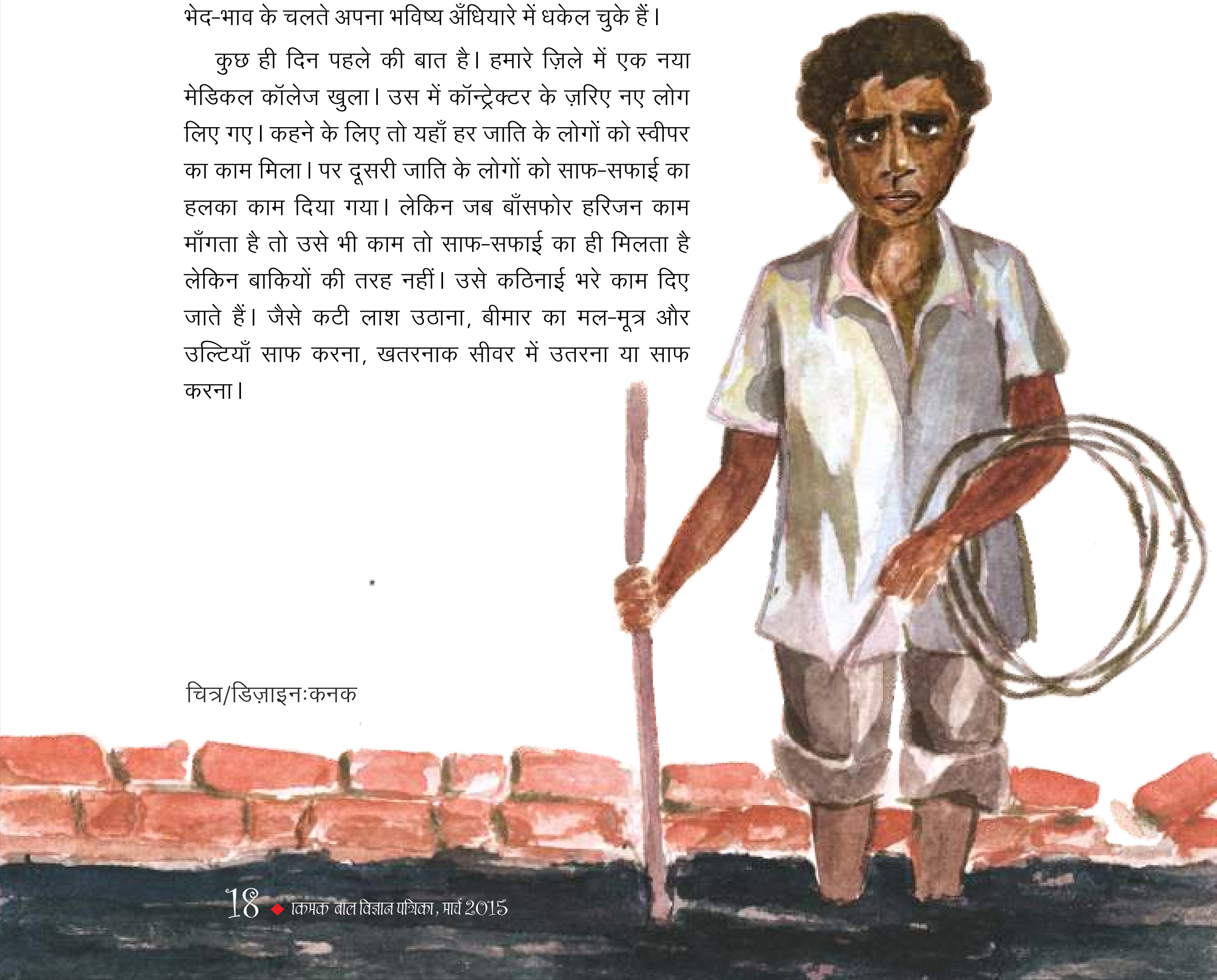

चित्र/डिज़ाइनः कनक

एक बहरूपिए से मुलाकात

सुशील शुक्ल

बहरूपिए अब कम दिखते हैं। पर जब दिखते हैं तो उन पर नज़र अटक जाती है। वे गाँव आते थे तो उनके पीछे हो लेते थे। उन दिनों मन में तो ज़रूर आया होगा पर कभी हिम्मत नहीं हुई उनसे बात करने की। आज की। बड़ी बेतकल्लुफी से की।

इसी बातचीत का एक अंश पेश है:

अनिल

- ☐ अनिल आप कहाँ के रहने वाले हैं?

- ■ सागर ज़िले के हिनौतिया खुर्द गाँव के हैं हम। जंगल का गाँव है। कोई काम नहीं। पानी नहीं। बिजली नहीं। किसी के यहाँ काम कर लें वहाँ कोई आदमी इतने पैसेवाला भी नहीं। लकड़ी बटोरकर शहर में बेचने का काम करते थे। पर बड़ा परिवार है। इससे पूरा नहीं पड़ता था।

- ☐ परिवार में कौन-कौन हैं?

- ■ माँ-पिता के अलावा आठ बहिनें हैं। मैं सबसे छोटा हूँ।

- ☐ सिर्फ शिव का रूप धरते हो?

- ■ नहीं, पहले-पहल पुलिस का रूप धरते थे। थोड़े दिनों ठीक चला। फिर दिक्कतें आने लगीं। तीन साल पहले की बात है। तब मैं चौदह साल का था। मूँछें नहीं थीं। पुलिसवाला तो बिना मूँछों के नहीं जँचता न। उन दिनों बार-बार रेज़र से मूँछ बना लेता था। सब लोग कहते थे कि इससे जल्दी मूँछें आ जाती हैं। गाँव के लोगों में पुलिस का ओहदा थोड़ा कम हो गया। कभी-कभी पुलिसवाले भी धमकाते थे। कहते तुम्हारी वजह से लोगों में हमारा डर कम हो रहा है। तुम पुलिसवालों का मज़ाक उड़ाते हो।

- ☐ अब सिर्फ शिव का रूप धरते हो?

- ■ हाँ, एक तो अलग-अलग रूप धरूँगा तो पोशाक के लिए पैसे चाहिए। शिव की ड्रैस थोड़ी सस्ती भी पड़ती है। चाँद कागज़ का लगा लो। साँप कागज़ का बना लो। जूड़ा सस्ता मिल जाता है। हाथ में त्रिशूल रख लो। थोड़ी सेफ्टी रहती है। कुत्तों वगैरह से भी।

□ शिव के रूप में क्या अच्छा लगता है?

■ चाँद और गंगा। और तीसरी आँख।

□ और साँप?

■ अरे, उससे तो हमें इतना डर लगता है कि क्या बताएँ! पर शिव का रूप साँप के बिना चलता भी नहीं।

□ किसका रूप धरना चाहते हो?

■ गणेश का। हमें यह देवता बड़ा अच्छा लगता है। पर एक ही दिक्कत है। गणेश के मुखौटे में हमारा चेहरा ढँक जाता है।

□ तो उससे क्या?

■ नहीं, हमारा इतना सुन्दर चेहरा ही ढँक जाए तो फिर क्या मतलब! चेहरा तो दिखना चाहिए न!

□ जूते क्यों नहीं पहनते?

■ जूते पहनने से घुँघरू ठीक से नहीं बजते।

□ बहरूपिए के अलावा कोई और काम किया?

■ किया है। लकड़ी बेचीं हैं। छत का काम किया है। छत का काम बड़ा हाड़तोड़ है। दिन भर लगे रहो। बहुत मिले तो 200 रुपए मिलेंगे। बहरूपिए के काम में 200 से ज़्यादा ही मिल जाते हैं। दिन-रात हमारे हाथ-पाँव दुखते रहते थे।

□ बहुरूपिए की क्या बात बढ़िया लगती है?

■ जगह-जगह घूमना। लोगों से मिलना। विचित्र-विचित्र लोगों से मिलना। कई लोग पाँव छुएँगे। कई गालियाँ बकेंगे। हम चुप रहते हैं। सुन के आगे बढ़ जाते हैं। वैसे बच्चे और बूढ़े सबसे ज़्यादा प्यार करते हैं हमसे।

□ रोज़ कितना चल लेते हो?

■ सुबह छह बजे निकले तो निकले। फिर शाम को छह-सात बजे घर पहुँचने से पहले चलते ही रहते हैं। अब पता नहीं कितना चल लेते होंगे!

□ मतलब बहरूपिए का काम चलता रहेगा?

■ नहीं, हम सोचते हैं कि थोड़ा पैसा जुड़ जाए तो एक चाय की गुमठी तथा नाश्ते की दुकान खोल लें। बहिनों की शादी करनी है। घर चलाना है। त्यौहारों को छोड़ दो तो अब इस काम में ज़्यादा कमाई नहीं बची है। चकमक

आइडिया *(पेज 14 का शेष भाग)*

“तो आप क्या समझते हैं बन्दरों को ले जा रहे हैं आरती उतारने के लिए?”

यहीं खटाई में पड़ गया आइडिया। कई-कई दिन यार्ड में पड़े रहे वैगन। कई मर गए, कई बीमार, रेलवे प्रशासन की हर्ज़ाने और बला टालने की रोज़-रोज़ की धमकियाँ...!

एक दिन दोनों पार्टनर आमने-सामने उदास बन्दरों की तरह बैठे थे तो सोमैया को फिर इलहाम हुआ, “आइडिया!”

“साँप की पूँछ में अभी जान बाकी है?” रामैया बोला।

“अरे, सुनो तो...।”

“सुनाओ...।”

“बन्दरों के पास एक खास कौशल होता है जो औरों के पास नहीं होता।”

“क्या?”

“अपने लक्ष्य की ओर लम्बी कूद मारते हुए बन्दर को बीच रास्ते में ही आभास हो जाए कि वह लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता, या उसे नहीं जाना चाहिए तो वह बीच रास्ते से ही यू-टर्न ले लेता है।”

“हूँऽऽऽ! यानी कि हमें भी...।”

“हाँ!”

इस प्रकार शुरू हुई दौलताबाद से दिल्ली की वापसी यात्रा – फिर वही ट्रक। फिर वही दल। फिर वही अँधेरा। अँधेरे में बचे हुए बन्दरों को रमैया और सोमैया का दल छोड़ आया।

धोखाधड़ी के आरोप में जेल हुई। छूटे तो पता चला उनके बालाजी मन्दिर पर किसी दबंग पुजारी ने कब्ज़ा कर लिया है, ज़मीन पर भी...। अब रमैया और सोमैया शेष बन्दरों के साथ बन्दर बने, मन्दिर की सीढ़ियों पर प्रसाद चुग रहे हैं। जानना चाहेंगे सोमैया को फिर कोई आइडिया या इलहाम हुआ कि नहीं! हुआ था। वह यह कि मन का लड्डू खा रहे थे कि बालाजी ने कसकर एक चाँटा रसीदा और लड्डू छीन लिया। चकमक

एक फूल खिला

आलोक वर्मा

एक फूल टहनी पर खिला
देखा जो आँखों ने उसे
तो वो आँखों में खिला
जो आँखों में खिला तो
मन में भी खिला
मन में खिला एक फूल
तो स्मृति में खिला फिर बार-बार
इस तरह स्मृति में बार-बार खिलता एक फूल
एक बार शब्दों में भी खिला
यूँ शब्दों में खिला एक फूल एक बार
तो फिर हमेशा खिला ही रहा।

फूल खिलता-मुरझाता है। जो भी खिलेगा मुरझाएगा। पत्थर नहीं मुरझाते। क्योंकि वे खिलते ही नहीं।

लेकिन यहाँ एक ऐसा फूल है जो खिलता चला जा रहा है और अन्त में जब वो शब्दों में खिलता है तो खिला ही रह जाता है। शताब्दियाँ बीतेंगी। कविता दुनिया की दूसरी भाषाओं में पहुँचेगी। जितनी भाषाओं में पहुँचेगी उतनी भाषाओं में खिलेगा यह फूल। देश, भूगोल व जलवायु चाहे जो भी हो। ऐसा फूल कविता ही खिला सकता था और उसने खिला दिया है। इस फूल के रंगरूप, खुशबू के बारे में कुछ नहीं कहा गया है। यह फूल जो शब्द में खिलेगा वह सबका फूल होगा। इस शब्द फूल को देखनेवाले हरेक के मन में उसका प्रिय फूल खिलेगा।

– नरेश सक्सेना

चित्रः मिली, ग्यारहवीं, संस्कार वैली स्कूल, भोपाल

रफ्तार मिस्त्री का स्कूटर

प्रभात

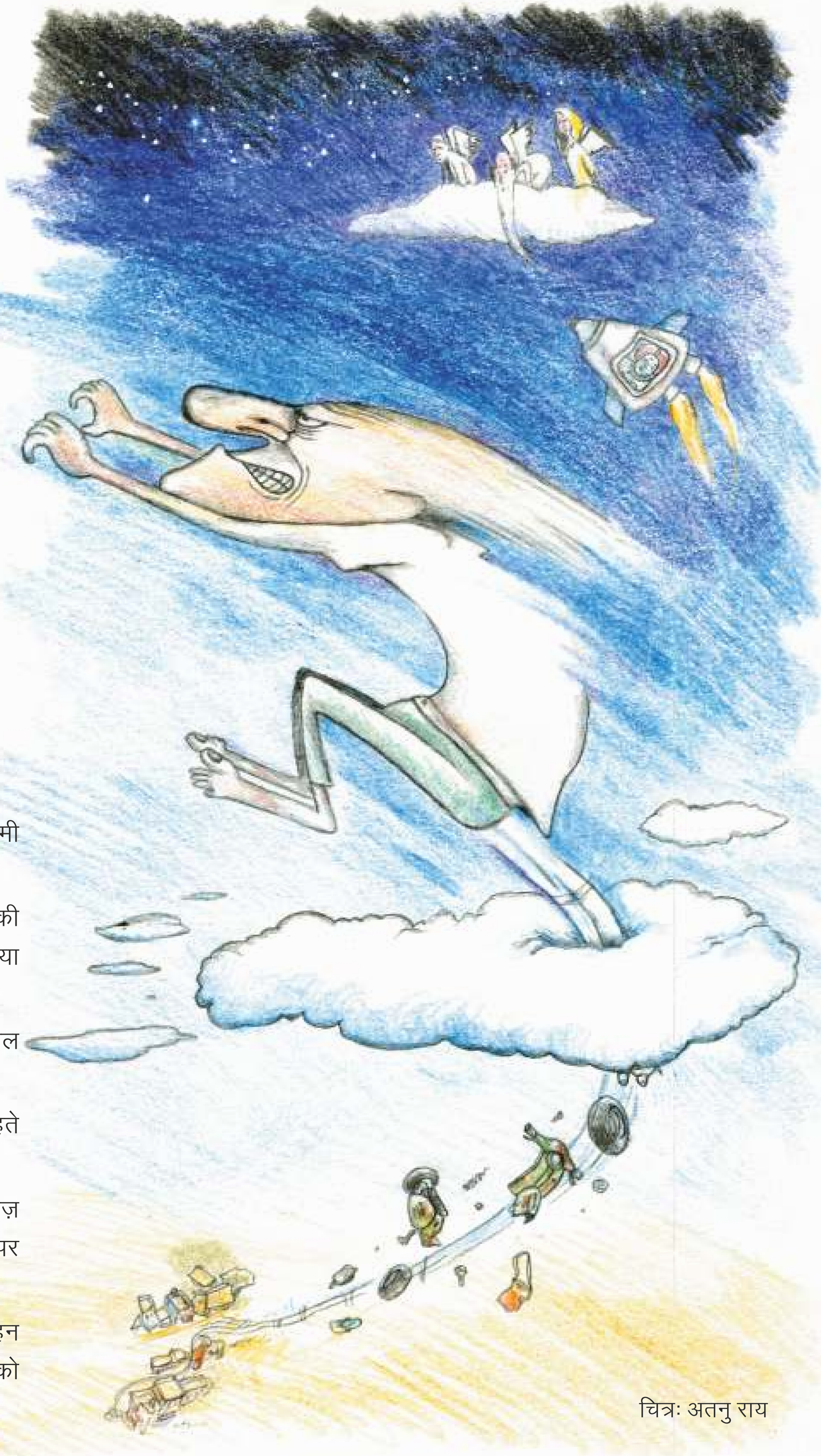

मिस्त्री रफ्तार खान को धीमी रफ्तार पसन्द नहीं थी।

वे कारखाने में आए वाहनों की रफ्तार बढ़ाने का काम किया करते थे।

उनकी ठीक की हुई साइकिल धुआँ उड़ाते हुए उड़ने लगती।

बन्द स्कूटी सॉरी-सॉरी कहते हुए दौड़ने लगती।

मोटरसाइकिल, हवाईजहाज़ की तरह शोर करते हुए सड़क पर उड़ती।

कारखाने में कोई नया वाहन नहीं होता तो वे अपने स्कूटर को ही नम्बर पर ले लेते।

चित्रः अतनु राय

"तेल कम पिया करो, तेज़ दौड़ा करो, ज़माने की रफ्तार के साथ रहो।" वे अपने बुज़ुर्ग खटारा स्कूटर से कहते।

एक रोज़ वे अपने स्कूटर की रफ्तार जाँचने के लिए उसे सड़क पर ले आए।

बूढ़ा स्कूटर जितना तेज़ दौड़ सकता था, सड़क पर दौड़ रहा था।

सड़क पर भयंकर शोर-शराबा और आफत-सी मच गई।

आसपास चल रहे वाहन स्कूटर की रोड-रोलर जैसी भारी-भरकम आवाज़ को सुनकर दूर हट गए।

पैदल चलनेवालों को लगा जैसे उनके ऊपर कोई हैलीकॉप्टर गिर रहा है। वे ऊपर-नीचे इधर-उधर झाँकने लगे।

रफ्तार खान स्कूटर की गति को ज़रा भी नीचे नहीं आने दे रहे थे।

भुटरू भुट भुट भुट्ट भुट्ट भुट्ट्ट्ट्ट् ट्ट ट्ट्ट् भुट्टूटूटॅ भुटिंग करते हुए स्कूटर के पुर्जे खुल-खुलकर गिरने लगे।

लाइट, हैंडिल, पहिए, एक के बाद एक खुलकर गिर रहे थे लेकिन रफ्तार खान गति को कम करने का नाम नहीं ले रहे थे।

भिटिंग भिट भिटभिट भिट भिटिर्रर्रर्र भिटिटिटिटिभिटटट और अन्त में भुटस करके स्कूटर पसर गया लेकिन रफ्तार खान चलते रहे।

वे बिना स्कूटर के भी स्कूटर पर बैठे हों ऐसे हवा में उड़े जा रहे थे।

एक था हाजी एक था नाजी

(पेज 10 का शेष भाग)

तीन-चार दिन बाद नाजी फिर आए तो बोले, "यार मैंने सोचा कि ये 'मिलती' का क्या मतलब है? कोई प्रसाद बाँट रहा है क्या? किसी ने आकर कह दिया कि मिलती है तो लाओ! तो क्या करोगे? नहीं नहीं ये खतरनाक है। 'मिलती' को मिटवा दो।"

"मिलती" भी मिट गया। अब रह गया "है"

अगले हफ्ते नाजी उधर से गुज़रे तो बोले, "यार तुम कोई ठेला लगा रहे हो क्या जो आज यहाँ खड़ा है तो कल सब्ज़ी मण्डी में और परसों बस स्टैण्ड पर! है तो है ही। अच्छी-खासी पक्की दुकान है। ऐसा करो ये 'है' हटवा दो।"

अब "है" भी हट गया। दुकान के ऊपर सिर्फ एक बड़ा-सा खाली सफेद बोर्ड रह गया।

लेकिन नाजी को अब भी चैन नहीं था।

अगली बार आए तो बोले, "दुकान के ऊपर ये बड़ा-सा सफेद बोर्ड ऐसा लग रहा है जैसे मरीज़ के पलंग पर कफन लहरा रहा हो! या तो इसे हटवा दो या इस पर कुछ लिखो।"

"क्या लिखें?" हाजी ने पूछा।

"अरे भाई पब्लिसिटी का ज़माना है, हर कोई अपने मुँह मियां मिट्ठू बन रहा है। तुम भी ऐसा ही कुछ लिखवा लो। मसलन तुम लिखवा सकते हो 'हमारे यहाँ ताज़ा मिठाई मिलती है'।"

फरवरी की चित्र पहेली हल

टो	क	नी		प	ग	ड	ण्डी	
पी	प	ल		त्त		ह		तू
		कं	का	ल		लि	फा	फा
	ग	ठ	री		ग	या		न
मू	ली		ग	ट	र		छि	
	चा	द	र		बा	द	ल	
आ		रि		घों		म	का	न
स	रि	या		स	ड़	क		ह
न	क्शा		ओ	ला		ल	ह	र

ज़मीं को जादू आता है!

गुलज़ार

मेरे इस बाग की मिट्टी में कुछ तो है
ये जादुई ज़मीं है क्या?
ज़मीं को जादू आता है!

अगर अमरूद बीजूँ मैं, तो ये अमरूद देती है
अगर जामुन की गुठली डालूँ तो जामुन देती है
करेला तो करेला.....निम्बू तो निम्बू!

अगर मैं फूल माँगूँ तो गुलाबी फूल देती है
मैं जो रंग दूँ उसे, वो रंग देती है
ये सारे रंग क्या उसने
कहीं नीचे छुपा रखे हैं मिट्टी में?
बहुत खोदा मगर कुछ भी नहीं निकला...!
ज़मीं को जादू आता है!

ज़मीं को जादू आता है
बड़े करतब दिखाती है
ये लम्बे-लम्बे ऊँचे ताड़ के पेड़, उँगली पर उठती है
हवाएँ खूब हिलाती हैं, ज़मीं गिरने नहीं देती!

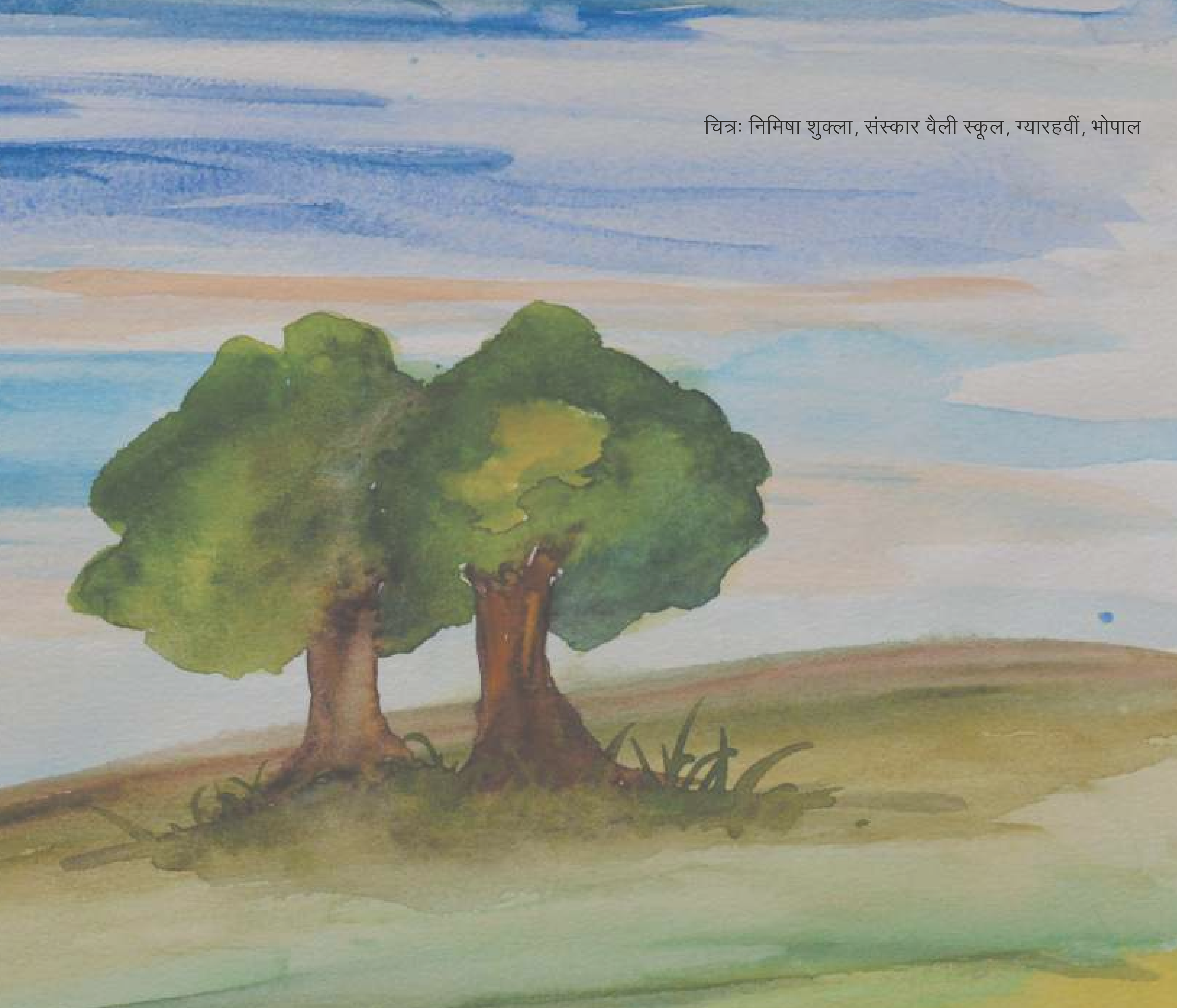

चित्रः निमिषा शुक्ला, संस्कार वैली स्कूल, ग्यारहवीं, भोपाल

मेरे हाथों से शर्बत, दूध, पानी
कुछ गिरे सब डीक जाती है
ये कितना पानी पीती है!
गटक जाती है जितना दो

इसे लोटे से दो या बालटी से,
या नल दिन भर खुला रख दो
गज़ब है, पेट भरता ही नहीं इस का
सुना है ये नदी को भी छुपा लेती है अन्दर
ज़मीं को जादू आता है!

ज़मीं के नीचे क्या "चीनी" की खानें हैं?
खटाई की चटानें हैं?
फलों में मीठा कैसे डालती है ये ज़मीं?
लाती कहाँ से है?

अनारों, बेरों और आमों में, सेबों में,
सभी मीठों में भी मीठे अलग हैं,
कि पत्ते खाओ तो फीके हैं और फल मीठे लगते हैं
मौसम्बी मीठी है तो निम्बू खट्टा है!
यकीनन जादू आता है!!
वगरना बाँस फीका, सख्त और गन्नों में रस क्यों है?

पहली रेल का किस्सा...

किशोर दरक

हम में से काफी लोगों ने कभी ना कभी रेल का सफर किया होगा! ज़रा सोचो, लोकल ट्रेनों के बगैर मुम्बई या मैट्रो के बिना दिल्ली की हालत कैसी होती? रेल न होती तो दुनिया कितनी अलग-सी होती!

देशभर में हर दिन दो से ढाई करोड़ लोगों का आना-जाना रेल से ही होता है। देश में रेल का आना सिर्फ एक इंजन या टेक्नोलॉजी का आना नहीं है। वैसे कोई भी टेक्नोलॉजी जब हमारी ज़िन्दगी का हिस्सा बनती है तो उसके साथ हमारी कई सारी आदतें, कल्पनाएँ जुड़ जाती हैं। चाहे वह टेक्नोलॉजी खाने-पीने से जुड़ी हो, पहनने-ओढ़ने से या घूमने-घुमाने से। काफी हद तक वो हमारी ज़िन्दगी का हिस्सा बन जाती है! जैसे तेज़ चलनेवाले या तेज़ी से काम करनेवालों को हम "तूफान मेल" कहते हैं या अपनी मंज़िल से भटके लोगों के लिए कहते हैं कि "फलाने की गाड़ी पटरी से उतर गई है"।

पर चीज़ें हमेशा आज जैसी नहीं थीं। रेल भले ही आज हमारी ज़िन्दगी का अहम हिस्सा है और उसने हमें इस देश का असली मतलब समझाने में बड़ी मदद की हो, पर एक ज़माना था जब अँग्रेज़ शासक इस दुविधा में थे कि रेल इस देश की जनता को भाएगी या नहीं!

16 अप्रैल 1853 के दिन मुम्बई से ठाणे के बीच इस देश की पहली रेल चली थी। महाराष्ट्र के जाने-माने चिन्तक व सामाजिक सुधारक केशव सातीराम ठाकरे (1885-1973) ने अपने बड़ों से सुनकर इसके बारे में बेहद दिलचस्प किस्सा लिखा। *जुन्या आठवणी* (पुरानी यादें) में प्रबोधनकार ठाकरे लिखते हैं कि...

बम्बई से ठाणे के बीच निकल पड़ी वही पहली रेलगाड़ी

बम्बई इलाके में रेलवे हो, यह माँग पहले सर जमशेटजी जिजीभॉय और जगन्नाथ नाना शंकरशेट ने की। मूलजी जेठा, मोरारजी गोकुलदास, आदमजी पीरभाई, डेविड सुसून जैसे कई नगर सेठों ने इस माँग में उनका साथ दिया। सन् 1853 में जी.आई.पी. (ग्रेट इंडियन पेनेन्सुलर) रेलवे की पहली लाइन बम्बई से ठाणे के बीच तैयार हुई। लोहे की पटरी पर अँग्रेज़ आग से चलनेवाली गाड़ी चलाएँगे – यह कल्पना भी लोगों के लिए हैरतअँगेज़ थी।

आखिरकार महूर्त का दिन निकला। 18 अप्रैल 1853, सोमवार की शाम 5 बजे पहली रेल बम्बई से निकल पड़ी। पत्तों, फूलों के हार और बन्दनवार आदि से सजी कमरों जैसी बड़ी दस बोगियाँ निकलीं। इंजन पर अँग्रेज़ों का झण्डा लहरा रहा था। बोगियों में गद्देदार कुर्सियों व सोफों पर सज-धजकर रेलवे के सारे डायरेक्टर, सर जमशेटजी जिजीभॉय, नाना शंकरशेट और बाकी सारे नगरसेठ बैठे थे। ठीक 5 बजे रेल ने कूऽऽऽ सीटी बजाते हुए अपना भकभक-फकफक सफर शुरू किया। बम्बई से ठाणे तक के रास्ते के दोनों ओर हज़ारों लोग कलयुग का यह अँग्रेज़ी अजूबा देखने के लिए खड़े थे। अचम्भे से उनके मुँह खुले के खुले थे। न बैल, न भैंसा, न घोड़ा....और सिर्फ भाप (Steam) के बल पर एक नहीं, दो नहीं पूरे दस कमरों की यह माला झुकझुक करती आराम से पटरियों पर चल रही थी! कमाल है भई इन अँग्रेज़ों का! अँग्रेज़ लोग यानी सीता-

चित्रः इंटरनेट

राम से वरदान पाकर हिन्दुस्तान का राजकाज चलाने पधारे लाल मुँहें बन्दर, जिनके सामने किसी की कुछ चलेगी नहीं – ऐसी बातें चारों ओर फैली हुई थीं। अब तो क्या कहना! आग और पानी को मिलाकर भाप से गाड़ी खिंचवाई! अँग्रेज़ तो मानों भगवान के अवतार हैं!

खैर, पहली रेलगाड़ी बम्बई से ठाणे जाकर सही-सलामत लौट आई। पर भाप से चलती उस जादू-टोने की गाड़ी में बैठने की हिम्मत लोग नहीं कर सके। दूसरे दिन से ऐलान हुआ कि ठाणे से बम्बई और वापसी का सफर मुफ्त करवाया जाएगा। रेलगाड़ी में बैठने में कोई खतरा नहीं है, सफर भी बहुत तेज़ और आरामदेह होता है, ये बातें लोगों के गले उतारने की बहुत कोशिशें रेलवे के अफसरों ने कीं पर लोगों में बड़ी अफवाहें फैली थीं। जैसे – मुम्बई में नई इमारतें और पुल बनाने का काम चल रहा है। उनकी बुनियादों में दफनाने के लिए फ़ुसलाकर लोगों को ले जाने की यह चाल है। ... एक-दो दिन सरकारी दफ्तरों के क्लर्कों, व्यापारियों की दुकानों पर काम करनेवाले गुमाश्तों (दिवानजी) जैसे लोगों को बम्बई से ठाणे ले जाकर वापस लाया गया। उन्होंने सबको अपना अनुभव सुनाया पर लोगों को तसल्ली ना हुई।

आखिरकार हर आदमी को सफर करने के लिए एक रुपया* इनाम देकर मुफ्त सफर करवाने का ऐलान किया गया। पैसे के लालच में लोग जाने के लिए तैयार होते तो उनके घरवाले उनके इर्द-गिर्द खड़े होकर छाती पीट-पीटकर रोने लगते। उन्हें समझाते-समझाते रेलवे के अफसरों के पसीने छूट जाते। जैसे ही कोई यात्री ठाणे-बम्बई के सफर से सही सलामत लौट आता कि पूछताछ करनेवालों की टोलियाँ उसके आसपास जमा हो जातीं। एक रुपए का इनाम आगे चलकर अठन्नी और फिर चवन्नी में तब्दील हुआ। लोगों के डर को जाता देख इनाम देना बन्द हुआ और रेलवे ने टिकट देना शुरू किया...

*यह उस ज़माने की बात है जब एक रुपए में एक

सर जमशेदजी जिजीभॉय और जगन्नाथ नाना शंकरशेट

देखा रेलवे की आज की लोकप्रियता के पीछे कैसी-कैसी अजीब चीज़ें छुपी हैं! एक टेक्नोलॉजी के तौर पर रेलवे का इतिहास बड़ा रोचक और मज़ेदार है। जैसे-जैसे लोगों को रेलवे की उपयोगिता समझ में आने लगी, वैसे-वैसे रेलवे का फैलाव बढ़ने लगा। गाँवों, शहरों, कस्बों के लोग खुद आकर रेलवे लाइनों की, रेलवे स्टेशनों की माँग करने लगे। कई बार तो उन्हें इसके लिए संघर्ष तक करना पड़ा। रेलवे के इर्द-गिर्द कहानियाँ, कविताएँ, फिल्में, मुहावरे, पहेलियाँ बुनी जाने लगीं। रेलवे हमारी ज़िन्दगी का एक अहम हिस्सा बनती गई।

लेकिन बावजूद इन सब के रेलवे के इतिहास के, एक दूसरे हिस्से को भी नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता। इस देश को "प्रगति" के रास्ते पर दौड़ानेवाली रेल के पीछे कुछ मज़ेदार तथ्य और शर्मनाक सत्य छुपे हैं। रेलवे के फैलाव के साथ मध्य भारत में जंगलों की अँधाधुँध कटाई, आदिवासियों को उनके पारम्परिक जंगल, ज़मीन संस्कृति से उखाड़कर फेंका जाना, सफाई का काम करनेवालों, मज़दूरों का बेइन्तिहा शोषण.... यह फेहरिस्त भी लम्बी है...

एक बैगा लोकगीत

धन रे अँग्रेज़ अकल वारे
अधरे चलाए रेलगाड़ी।

कहा हवय गाड़ी
कहा हवय टेशन
धन रे अँग्रेज़ ...

दिल्ली मा टेशन
मण्डला में गाड़ी
धन रे अँग्रेज़ अकल वारे
अधरे चलाए रेलगाड़ी

अधरे - अधर में

स्रोतः जयसिंह धुर्वे, नवल सिंह
गाँव- अमवार
संकलनः प्रभात, बिरजू
सौजन्यः नेगफायर

मेरा पन्ना

उन्दरो

ठण्डे की छुट्टी में हम जब नासीपुर गए, तो अजब हुआ। एक रात हम छह भाई-बहन सो रहे थे। अचानक टक-टक होने लगा। मैंने कतरी में से झाँका तो देखा कि एक झाड़ा उन्दरो आया के काँच के गिलास को उठाकर दीवार पर पटक रहा था। मुझे लगा, फूटा तो हम सब शक के घेरे में आएँगे। मैंने पास पड़ी लकड़ी उन्दरो के पास फेंक दी। उन्दरा नास गया। मैंने सोचा फिर आ न जाए। उठकर गिलास टोकनी से तोप कर रख दिया। सबेरे जे.पी. उठा तो हैरान था। गिलास वहाँ कैसे पहुँच गया। मैंने बताया तो बहुत हैरान हुआ। वो बोला, "उन्दरो ऐसा थोड़ी ही कर सकता है।" फिर बोला, "आया ने गिलास से दारू पिया था। थोड़ा रह गया होगा सो उन्दरो पी लिया होगा। इसलिए तो दारू कुट्टा जैसे तोड़-फोड़ कर रहा था।"

– सोनम सिंह, अरण्यवास, भोपाल

कतरी – पुराने कपड़ों से बना सूती कम्बल, झाड़ा – मोटा, उन्दरो– चूहा, आया– माँ, नास– भाग, टोकनी – टोकरी, टोप– ढँक, दारू कुट्टा– पिय्यक्कड़।

– राजन्य प्रजापति, दसवीं, केन्द्रीय विद्यालय विदिशा, म. प्र.

किनारा

लहरों के पार
दूर
मैंने दूर नज़र फैलाई
रेतीले किनारे पर
पत्थर कोयले की तरह चमकते हैं
धूप में गर्मी है
मुझे नहीं एहसास
मुझे तीखे कँकड़ों का भी नहीं एहसास
खड़ी हूँ बस
ज़मीं का विस्तार देखती हूँ

–शाना, 8 वर्ष, चंडीगढ़, पंजाब

– गार्गी मोहन शिंगड़े, दूसरी, भोपाल

ऐड़ी ज्योती

नानीपन (बचपन) में ही ज्योती ऐड़ी (पागल) जैसे करती थी। एक बार तीन-चार साल पहले, तब हमारा दादा ज़िन्दा ही था। उसने मुझे छप्पर से गिरा दिया था। बा (मौसी) काम से बाहर गए थे। हम दोनों बहन इमली तोड़ने के लिए छप्पर पर चढ़े। मैंने ज़्यादा इमली तोड़ लिया, तो वो चिढ़ गई। मुझे ढकेल दिया। मैं कोने की तरफ थी। गिर गई। घबराकर पास निकला सरिया पकड़ लिया। पास खड़ा मारस्या ने कहा, "ये बच्ची गिरने ााली है।" मेरा हाथ भी छूट गया। मैं गिर गई। मारस्या ने मुझे झेल लिया। फिर आँगन में बैठे दादा के पास छोड़ दिया। दादा-दादी मुझे ज़्यादा लाड़ करते हैं। दादा बहुत गुस्सा हो गया। ज्योती को खोजने उठा। डाँट के डर से ज्योति बहाने बनाकर ज़ोर-ज़ोर से रो रही थी। फिर दादा क्या डाँटता! थोड़ी देर बाद मैं अन्दर गई, तो वो मेरे तोड़े इमली भी खा रही थी। उसकी ये आदत मुझे बिलकुल पसन्द नहीं।

– सुनैना सिंह, अरण्यवास, भोपाल

गीत

धान कुटाए, खाए चावल
चावल कुटाए, खाए रोटी
रोटी है भई मोटी-मोटी
रोटी को खाए फिर छोटी
छोटी जब रोटी हो जाए
बहुत खुश छोटी हो जाए
फिर नाचने वो लग जाए
और किसी से रूठ न पाए

– लीना, गोमती, पायल,
हिमांशी व देविका
अजीमप्रेमजी स्कूल,
धमतरी, छत्तीसगढ़

बचपन के दिन

अलविदा: आर के लक्ष्मण

26 जनवरी 2015 को हम सबके के प्रिय कार्टूनिस्ट आर के लक्ष्मण हमसे विदा हुए। 24 अक्टूबर 1921 को मैसूर में जन्मे लक्ष्मण के चित्रों को हमने उनके भाई आर के नारायण की लिखी *मालगुडी डेज़* में देखा और खूब सराहा। साठ साल तक लक्ष्मण के कार्टून *टाइम्स ऑफ इंडिया* के एक छोटे-से कोने को रोशन करते रहे। साठ सालों तक लोगों की सुबहें इन्हीं गुदगुदाते, खलबली मचाते कार्टूनों से शुरू होतीं। वो खुद को लक्ष्मण के उस आम आदमी के साथ खड़ा पाते। उसी के साथ खड़ा होकर वे उन नेताओं के छलकपट को देखते जिन्हें दरअसल तो उनके सपनों, उम्मीदों, इच्छाओं को पूरा करना था।

हमारे घर में एक गैराज हुआ करता था। इस गैराज में बिच्छू और मकड़ी के जाले बहुत थे। बिच्छू ढूँढने के लिए उन दिनों हम दोस्तों के साथ गैराज में घुस जाते। बिच्छू दिखता तो उसे पत्थर मारते और लकड़ी से इधर-उधर धकेल देते। मेरे भाई को दूसरे काम में मज़ा आता था। वह टिड्डे पकड़ने में माहिर था। टिड्डे पकड़कर वह उनको ट्रेनिंग देकर उनका सरकस खोलना चाहता था। हम टिड्डे को पकड़कर उसे एक अच्छे-से बॉक्स में घास के साथ रखते। रसोई से चुराकर कुछ चीज़ें बॉक्स में डालते पर टिड्डा दूसरे दिन तक ज़िन्दा नहीं रहता। तुम्हें लगेगा कि यह जानवरों के साथ ठीक बरताव नहीं है। पर यह तो बचपन की बात है। बड़ा होने पर हम खुद ही समझ जाते हैं कि जानवरों को सताना ठीक नहीं है। पर बड़े होने पर भी सभी नहीं समझते हैं वरना दुनिया में इतनी लड़ाइयाँ क्यों होतीं! खैर, तुम तो अपनी तरह से अपने खेल खेला करो। खेलों में मज़े लिया करो। *(आर के लक्ष्मण की जीवनी से लिया एक अंश...)*

अपनी आत्मकथा *द टनल ऑफ टाइम* (समय की सुरंग) में वे कहते हैं – मैंने वह सब बनाया जो मुझे मेरे कमरे की खिड़की से बाहर नज़र आया – सूखी टहनियाँ, पत्तियाँ, छिपकली जैसे रेंगते जीव, जलाऊ लकड़ी को चीरता कोई आदमी, और हाँ, अलग-अलग मुद्राओंवाले कौए जो सामनेवाले घरों की छतों पर अकसर दिखते...

एक आम आदमी की तरह कौआ भी एक आम पक्षी है शायद इसीलिए उन्होंने बहुत कौए बनाए। उनके कौओं को याद करते उनके एक मित्र लिखते हैं –

लक्ष्मण के बनाए कौए, कौओं के प्रति उनके असीम प्यार में रंगे होते हैं। उनमें गज़ब की हरकत दिखती है। उन्हें देख लगता है जैसे वो अभी कर्कश आवाज़ में कॉव-कॉव करने लगेंगे, आप पर हमला कर बैठेंगे या आपके हिस्से पर छीना-छपटी करने लगेंगे....यानी कुछ भी ऐसा जो आपको अशान्त, असहज कर देगा। ये सारी हरकतें लक्ष्मण के स्वभाव से ज़रा मेल नहीं खाती हैं। पर शायद इन सबका जुड़ाव उनके बचपन से है... तभी तो ये उनके बड़ी करीब लगती हैं। तब शायद लक्ष्मण खुद भी बड़े शैतान रहे होंगे। बड़े हुए तो वे बहुत ही शान्त-सरल स्वभाव के हुए। पर कौओं ने अपना रौद्र रूप वैसा ही बनाए रखा।

(आर के लक्ष्मण पर एक दिलकश लेख के लिए चकमक का जनवरी 2009 का अंक पलट सकते हो।)

गुगली

राजेन्द्र धोड़पकर

भूत को सफेद ही क्यों दिखाया जाता है?

रमा चारी

मैं तब पाँचवीं कक्षा में थी। मेरी एक सहेली रोज़ शाम को भूतों के किस्से सुनाती। पता नहीं उस समय हम इनसे डरते कितना थे और कितना रोमांचित होते थे! भूतों के किस्से तो ज़माने से सुनाए जाते रहे हैं पर आज तक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसने वास्तव में भूत को देखा हो। अगर किसी ने भूत देखा नहीं तो उसका चित्र सूझा कैसे? और क्यों उसे हमेशा सफेद ही दिखाया जाता है! हमारे यहाँ ही नहीं विदेशों में भी ऐसा ही होता है। हम बचपन में कैस्पर (casper) कॉमिक्स बड़े शौक से पढ़ते थे। इस के मुख्य पात्र भूत ही हैं और सबके सब सफेद दिखाए जाते हैं। (चित्र 1)। कुछ दिन पहले मैं आँखों की संरचना और देखने की प्रक्रिया के बारे में सोच रही थी कि एकदम से एक विचार आया। मुझे लगा कि जिसने भी पहले-पहल भूतों को सफेद दिखाने की कल्पना की थी उसने हमारे देखने की प्रक्रिया का अच्छा अवलोकन किया होगा! मैंने ऐसा क्यों सोचा, आगे बताती हूँ।

कैस्पर कॉमिक्स

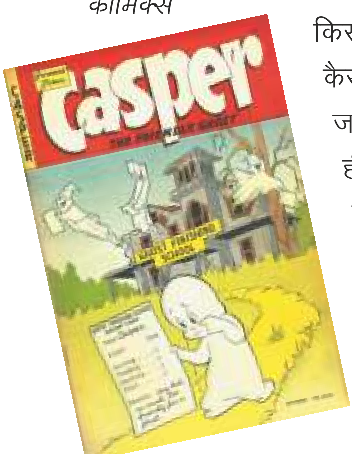

चित्र 1

पहले हम यह समझते हैं कि हम आँखों से देखते कैसे हैं।

चित्र 2 में हमारी आँख की संरचना का एक सरल चित्र दिखाया गया है। तुम खुद भी दर्पण में अपनी आँख ध्यान से देखो या अपने किसी मित्र की आँखों को देखो। हमारी आँख एक गोला होती जिसका कुछ ही हिस्सा बाहर चेहरे पर दिखाई देता है। बाकी हिस्सा अन्दर होता है और चारों तरफ माथे, गाल और नाक की हड्डी से सुरक्षित रहता है। चेहरे पर दिखाई देनेवाले हिस्से में पुतली होती है जिसके बीचोंबीच एक छोटा-सा छेद होता है। इसी छेद में से होकर प्रकाश आँखों के भीतर जाता है। पुतली से होकर अन्दर जानेवाला प्रकाश आँख के लैंस से गुज़रता है। यह लेंस वही काम करता है जो कैमरे का लैंस करता है यानी प्रकाश को आगे फोकस करता है (बॉक्स देखो)। आँख की पिछली दीवार पर अन्दर की तरफ एक परत होती है जिसे दृष्टिपटल या रेटिना (retina) कहते हैं। लैंस आँख के अन्दर आनेवाले प्रकाश को रेटिना पर फोकस करता है। रेटिना पर जब प्रकाश पड़ता है तो उसमें विद्युत सिग्नल उत्पन्न होते हैं। रेटिना एक तन्तु (नस) से हमारे मस्तिष्क (दिमाग) से जुड़ा होता है। रेटिना के विद्युत सिग्नल इसी तन्तु से सीधे हमारे दिमाग में जाते हैं और वह समझ जाता है कि हम क्या देख रहे हैं (चित्र 3)। यानी देखने के लिए आँख और दिमाग दोनों सही होने चाहिए। जब दिमाग अन्य किसी काम में व्यस्त हो तो आँखों के सामने की चीज़ भी दिखाई नहीं पड़ती।

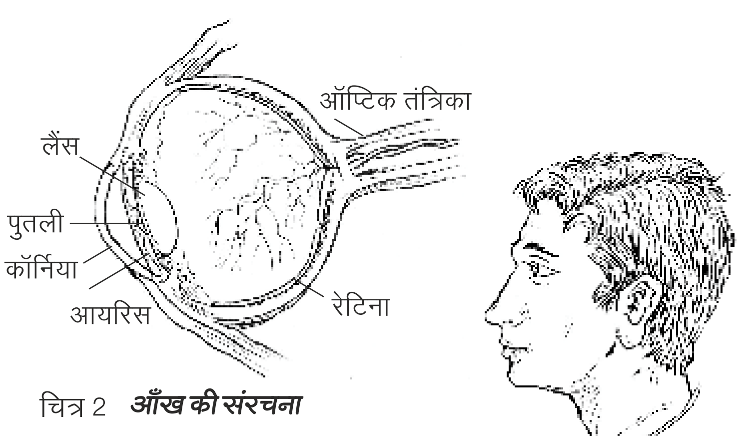

चित्र 2 ***आँख की संरचना***

चेहरे पर आँख का कुछ हिस्सा ही बाहर से दिखाई पड़ता है, बाकी अन्दर छुपा रहता है।

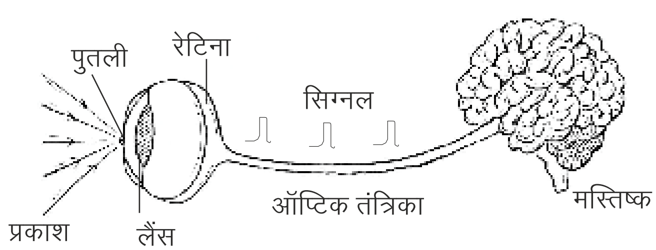

चित्र 3 ***आँख और दिमाग का कनेक्शन***

प्रकाश पुतली और लैंस से होकर रेटिना पर पड़ता है जहाँ विद्युत सिग्नल उत्पन्न होते हैं।
ये सिग्नल ऑप्टिक नर्व के द्वारा मस्तिष्क में पहुँचते हैं।

बात उठी थी भूतों की...। क्या भूतों को सफेद दिखाने का सम्बन्ध इस बात से है कि उन्हें हमेशा रात के अँधेरे में ही दिखाया जाता है? क्या प्रकाश की मात्रा का देखने की प्रक्रिया से कोई सम्बन्ध है? यह तो हमने जाना कि प्रकाश पड़ने पर रेटिना विद्युत सिग्नल उत्पन्न करता है। तो क्या इसमें प्रकाश की मात्रा कम-ज़्यादा होने से कुछ अन्तर पड़ता है? इसके लिए रेटिना के बारे में थोड़ा और जानते हैं।

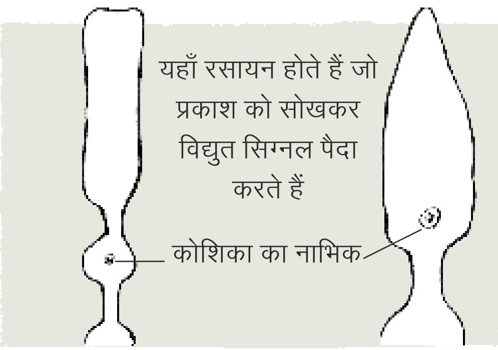

चित्र 4 *रेटिना की छड़ (rod) व शंकु (cone) कोशिकाएँ। इनके नाम इनके आकार के कारण पड़े हैं।*

रेटिना या दृष्टिपटल दो तरह की कोशिकाओं से मिलकर बना होता हैः पहली शंकु (cone) के आकार की कोशिकाएँ और दूसरी छड़ (rod) के आकार की कोशिकाएँ (चित्र 4)। इन्हीं कोशिकाओं में वे रसायन होते हैं जो अपने ऊपर पड़नेवाले प्रकाश को सोखकर विद्युत सिग्नल उत्पन्न करते हैं। शंकु कोशिकाएँ खुद तीन तरह की होती हैं। इनमें अलग-अलग रसायन होते हैं जो क्रमशः लाल, हरे व नीले रंग के प्रकाश को सोख सकती हैं। यह तो शायद तुम्हें पता हो कि इन तीन रंगों के प्रकाश को जोड़कर बहुत सारे रंग बना सकते हैं (चकमक जनवरी 2015 में “रंगों का जोड़”)। तितलियाँ, हरे-भरे पेड़-पौधे, चटक फूल, रंगीन टी.वी., गुब्बारे जो इतने रंग-बिरंगे दिखते हैं तो इसमें इन शंकु कोशिकाओं का बड़ा हाथ है।

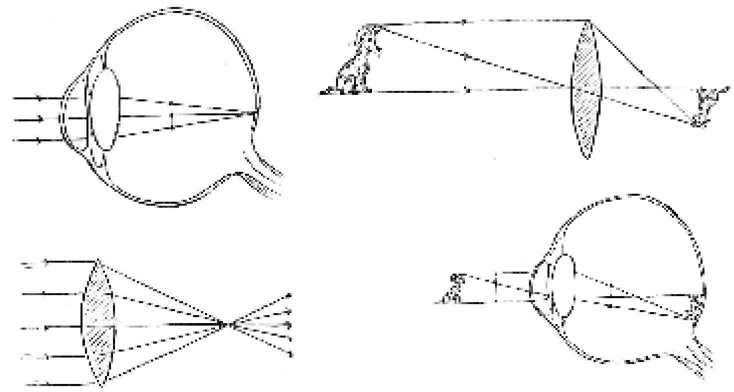

प्रकाश की किरणों को फोकस करता लैंस

आँख के रेटिना पर कुत्ते के चित्र का हू-ब-हू बनना

आँख का लैंस क्या करता है?

हमारी आँख में कई तरफ से प्रकाश पड़ता है। जब यह प्रकाश आँख के लैंस से गुज़रता है तो वह उसे आगे एक जगह इकट्ठा कर देता है। इसी को फोकस करना कहते हैं। चित्र में यही दिखाया गया है। अगर आँख सही काम कर रही है तो लैंस प्रकाश को रेटिना पर फोकस करता है। जब ऐसा नहीं होता तो हमें चीज़ें धुँधली दिखाई देती हैं। उन्हें ठीक से देखने के लिए हम एक और लैंस लगा लेते हैं – यानी चश्मा।

सभी चित्रः प्रशान्त सोनी

लेकिन इन शंकु कोशिकाओं में एक कमी है। जैसे-जैसे इन पर पड़नेवाले प्रकाश की मात्रा घटती है ये सुस्त होने लगती हैं और बहुत कम प्रकाश में (जैसे अमावस की रात में) तो बिलकुल काम नहीं कर पातीं। इस बात को तुम खुद करके देख सकते हो। कोई रंग-बिरंगी चीज़ या कागज़ एक ऐसी जगह पर रख दो जहाँ कोई उसे उठाए नहीं। अब अलग-अलग समय पर उसे देखो और नोट करो कि सुबह, दोपहर, शाम व रात को यानी तेज़ व कम रोशनी में उसके रंग कैसे दिखते हैं। या कभी सूर्यास्त के समय (खासकर बस या ट्रेन में सफर करते हुए) खिड़की से देखो कि कैसे बाहर के नज़ारों के रंग सूरज ढलने के साथ गायब होने लगते हैं। चित्र 5 में फूलों की एक तस्वीर दिखाई गई है। बहुत कम रोशनी में फूलों के आकार तो दिख रहे हैं पर उनका रंग नहीं दिखता। क्या तुम्हारा अवलोकन भी यही दिखाता है? ऐसा क्यों होता है?

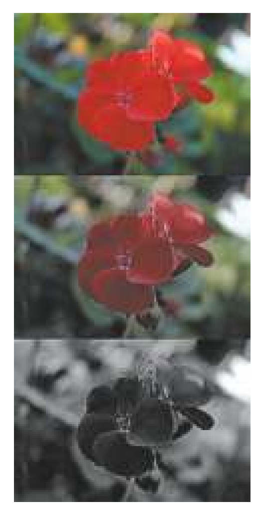

चित्र 5

जिरेनियम फूलों की तस्वीर। दिन के प्रकाश में फूल चटक लाल और पत्तियाँ हरी दिखती हैं। शाम के धुँधलके में फूलों का रंग दब जाता है और भूरा-सा दिखने लगता है जबकि पत्तियाँ अभी भी काफी हरी दिख रही हैं। अँधेरा और गहराने पर कोई भी रंग नहीं दिखते।

यह सही है कि शंकु कोशिकाएँ बहुत कम रोशनी में ठीक से काम नहीं कर पाती हैं लेकिन तुमने देखा होगा कि कम रोशनी में भी कुछ-कुछ दिखता तो है। ऐसा इसलिए कि रोशनी बहुत कम होने पर छड़ कोशिकाएँ अपना काम शुरू कर देती हैं। ये कोशिकाएँ इतनी संवेदनशील होती हैं कि बहुत कम रोशनी में भी अच्छा-खासा विद्युत सिग्नल दे देती हैं। लेकिन छड़ कोशिकाएँ शंकु कोशिकाओं की तरह तीन तरह की नहीं बल्कि एक ही तरह की होती हैं। इनके द्वारा भेजे विद्युत सिग्नल रंग के बारे में कुछ नहीं बताते। अब हमारे दिमाग को तो ये सिग्नल भी समझने हैं तो वह इन सिग्नल से बननेवाली तस्वीर को पुराने समय की ब्लैक एण्ड वाइट तस्वीरों जैसा समझता है। यानी जहाँ थोड़ी रोशनी हो वह सफेद बाकी भूरा-स्लेटी या काला। अब चूँकि रंग या अलग-अलग रंगतें (शेड्स) नहीं दिखतीं इसलिए हमें चीज़ों का सिर्फ बाहरी आकार दिखता है – उसकी बारीकियाँ नहीं। मुझे लगता है कि इसीलिए भूत की कल्पना एक सफेद, सपाट चेहरेवाले की की गई। बस उसकी आँख, नाक वगैरह काले निशान जैसे दिखते हैं।

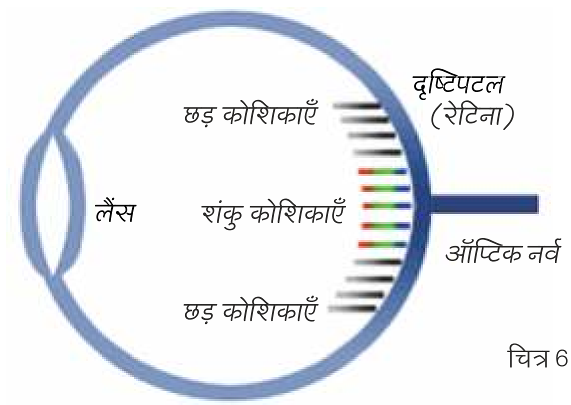

चित्र 6

अगर अब भी मेरी बात से सहमत नहीं हो तो शंकु और छड़ कोशिकाओं का एक और अन्तर बताती हूँ। शंकु कोशिकाएँ रेटिना के केन्द्र में रहती हैं जबकि छड़ कोशिकाएँ किनारों पर रहती हैं (चित्र 6)। तो कम रोशनी में यानी जब हम छड़ कोशिकाओं की मदद से देखते हैं तो हमें आँखों के सामने की बजाय इधर-उधर की चीज़ें ही दिखती हैं। पर जब हम उन्हें सामने से देखने की कोशिश करते हैं तो उन्हें देख नहीं पाते हैं (शंकु कोशिकाएँ उतने कम प्रकाश में सिग्नल नहीं दे पातीं)। यानी आँख के कोने में कुछ दिखा और जैसे ही गर्दन घुमाकर अच्छे से देखने की कोशिश की कि जनाब गायब! यही है न भूत के लक्षण! तो अब भूत देखने के बारे में क्या लगता है?

चित्र 7

रात में फूलनेवाला पौधा - डच मैन्स पाइप
यह फोटो रात को दस बजे के करीब लिया गया था।

प्रकृति को भी शायद देखने की हमारी इन विशेषताओं के बारे में पता होगा! ऐसा इसलिए क्योंकि रात में खिलनेवाले फूल (जैसे रात की रानी, रजनीगन्धा वगैरह) अधिकतर सफेद दिखते हैं। या इसलिए भी कि रात में रंग तो दिखाई देते नहीं और ये फूल परागण करनेवाले कीटों को अपनी खुशबू से आकर्षित करते हैं। तो फिर रंग में खर्च क्यों ज़ाया किया जाए! मेरे घर में एक पौधा है जिसके सफेद रंग के फूल रात में 9-10 बजे खिलना शुरू होते हैं और 11-12 बजे तक पूरी तरह खिल जाते हैं। सुबह तक ये मुरझा जाते हैं (चित्र 7)। कई लोग इसे ब्रह्मकमल कहते हैं जो दरअसल यह है नहीं। इसे डच मैन्स पाइप भी कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम *epiphyllum oxypetalum* है।

अब तुम भी सोचना कि आखिर हम क्या देखते हैं और कैसे देखते हैं! कोई नया विचार आए तो ज़रूर बताना।

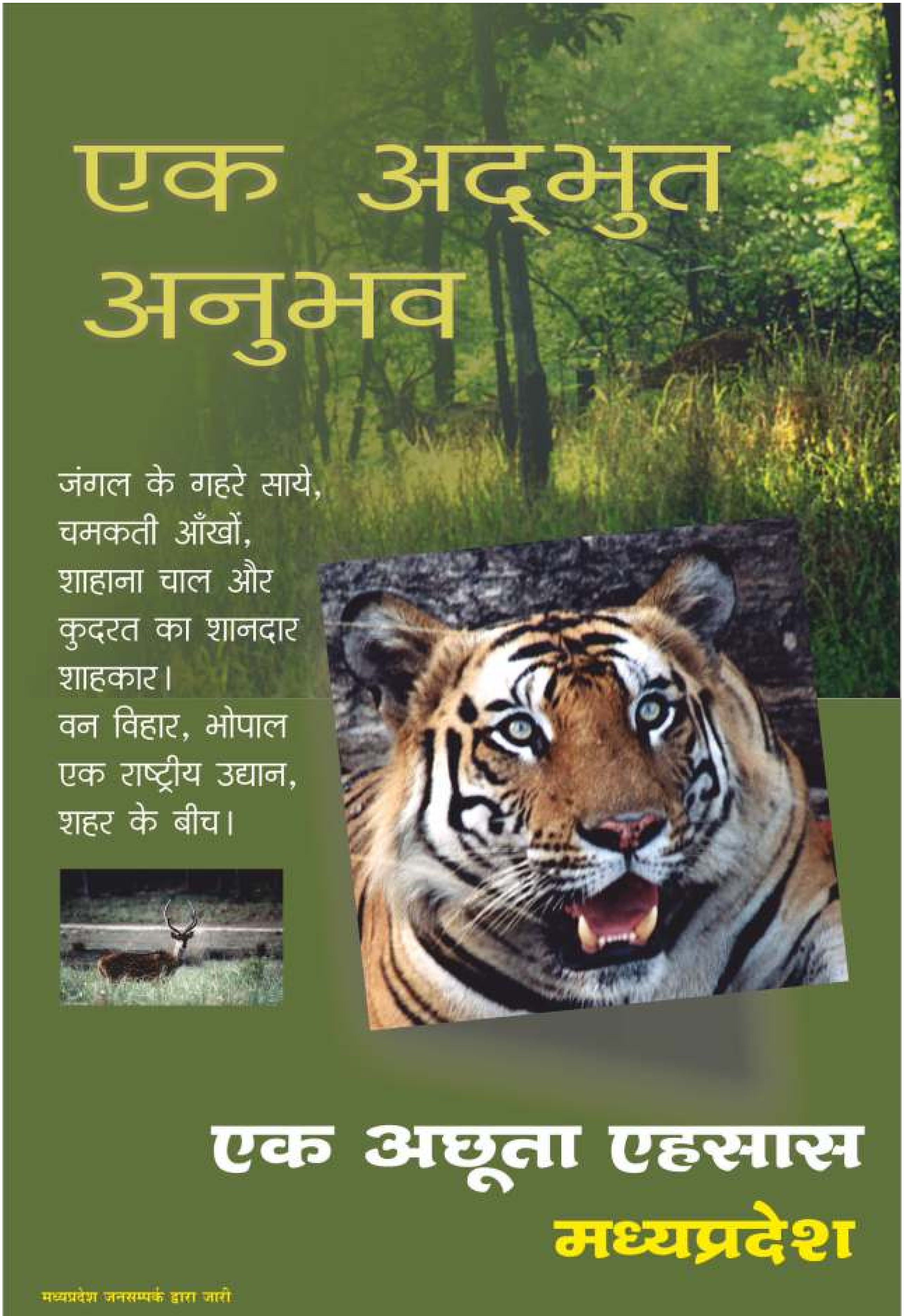
एक अद्‌भुत अनुभव
जंगल के गहरे साये,
चमकती आँखों,
शाहाना चाल और
कुदरत का शानदार
शाहकार।
वन विहार, भोपाल
एक राष्ट्रीय उद्यान,
शहर के बीच।
एक अछूता एहसास
मध्यप्रदेश
मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

कोठी बनाल

म्यूरियल काकानी

कुछ समय पहले मैंने वास्तुकला की एक अनोखी और एकदम मौलिक शैली के बारे में एक लेख पढ़ा। इसे उत्तराखण्ड के आपदा प्रबन्धन विभाग के डॉ. पियूष रौतेला और गिरीश जोशी ने लिखा है। इस वास्तुशैली के घरों को कोठी बनाल कहते हैं। इस की खासियत यह है कि ये चार-पाँच मंज़िला इमारतें पूरी तरह से आसपास के पत्थरों और लकड़ियों से बनाई जाती हैं। इनमें आर.सी.सी या सीमेन्ट का ज़रा इस्तेमाल नहीं होता। इस का नक्शा बहुत ही सरल होता है। और यह उठे हुए, ठोस और विशाल चबूतरे पर बना होता है। उत्तराखण्ड जैसी जगह में जहाँ भूकम्प बहुत आते हैं, ये इमारतें पूरी तरह से सुरक्षित रहती हैं। कहते हैं कि कोठी बनाल का बनना 1000 ईस्वीं में आए भूकम्प के बाद ही शुरू हुआ। इस भूकम्प ने गढ़वाल और कुमाऊँ में भारी तबाही मचाई थी।

पाँच मालेवाला कोठी बनाल घर

यमुना नदी के पार बड़कोट के सामने का सुनाल्दी गाँव

तो एक बार जब मैं उत्तरकाशी (गढ़वाल) की यात्रा पर गई, तो मन में आया क्यों न एक ऐसी आकर्षक इमारतों को भी देख लूँ! वैसे तस्वीरों से तो घर से ज़्यादा मुझे ये किसी किले की काल कोठरी जैसी लगती थीं। लेख में पढ़ा था कि ऐसे कुछ पुराने बने घर यमुना नदी के पार बड़कोट के सामने हैं। बस फिर क्या था मैं अपने एक प्रिय दोस्त करन सिंह के साथ निकल पड़ी। उसने मेरी इस सनक भरी इच्छा को पूरा करने में पूरी मदद की।

तो किसी तरह हम पूछते-पाछते सुनाल्दी गाँव जा पहुँचे। गाँव में घुसते ही ठीक हमारे सामने एक भव्य ऊँची इमारत खड़ी थी।

“इसमें तो कोई रहता है। क्या मैं अन्दर जा सकूँगी?” मैंने सोचा।

करन शायद मेरे मन की बात को भाँप गए थे। बोले, “आप इसे अन्दर से देखना चाहती हैं? कोई दिक्कत नहीं! आइए।”

और मैं अन्दर गई। वहाँ घुप अँधेरा था। सामने एक खड़ी सीढ़ी थी – ठेठ उत्तराखण्डी सीढ़ी। लकड़ी की इस सीढ़ी में खाँचे इतने ही खुदे थे कि उन पर मेरे पँजे का बस ज़रा-सा हिस्सा टिका था। किसी तरह मैं पहले माले पर पहुँची। वैसे तो सब ठीक था...बस वापस उतरने को लेकर थोड़ी फिक्र थी। पिछले चार सौ सालों में जाने कितने पाँव कितनी बार इस पर से गुज़रे थे! इससे लकड़ी की अच्छी-खासी घिसाई हो गई थी। वो चमक रही थी। उस पर साबुन जैसी फिसलन हो रही थी। यहाँ से गिरना खतरनाक हो सकता था!

पहले माले पर, एक मोटे से भारी दरवाज़े को धक्का देकर खोला गया। और मुझे भीतर आने का न्यौता मिला...

“अपने सिर को सम्भालना!!”

“हाँ, बिलकुल।” या तो मैं कुछ ज़्यादा लम्बी थी या छत कुछ ज़्यादा नीची! मेरे लिए सीधा खड़े रहना मुश्किल था। लेख में पढ़ा याद आया – कोठी बनाल का वास्तु (आर्किटेक्चर) इसमें रहनेवालों की सुविधा पर उतना ध्यान नहीं देता। इसमें उपयोगिता को ज़्यादा महत्व दिया जाता है। मुझे आगाह किया गया था! अपनी पीठ को झुकाए-झुकाए मैं खिड़की के पास गई। किसी किले की ही तरह यह खिड़की डेढ़ फुट मोटी दीवार में बने सुराख जैसी थी। खिड़की के आसपास लकड़ी की मज़बूत चौखट थी ताकि मज़बूती में आई कमी की भरपाई हो सके।

डरते-डरते मैं दूसरे माले में पहुँची...भूकम्प की आशंका के बावज़ूद उत्तराखण्ड में बहुमंज़िला घरों का चलन आम है। इस क्षेत्र की दोनों भाषाओं

अन्दर घुप अँधेरा था।

ठेठ उत्तराखण्डी लकड़ी की सीढ़ी।
इस सीढ़ी में खाँचे इतने ही खुदे थे कि मेरे पँजे का बस ज़रा-सा हिस्सा उस पर टिका था...

(कुमाऊनी और गढ़वाली) में इमारत की अलग-अलग मंज़िलों के लिए खास शब्द हैं। अभी मैं बाउँद पर थी और बाराउर पर जा रही थी। तुम पहचान पाए कि किस माले से किस माले पर जा रही हूँ?

चौथा माला सबसे रोचक था। उसमें रहने के कमरे थे और एक बालकनी भी थी। यह चारों ओर लकड़ी की रेलिंग से घिरी थी। बालकनी से गाँव का सुन्दर नज़ारा दिखाई दिया। एक ही पंक्ति में मुझे चार और कोठी बनाल घर नज़र आए।

"क्या आप पाँचवें माले पर चलना चाहेंगी?"

दूर से दिखता चार मालेवाला कोठी बनाल

"नहीं...नहीं, शुक्रिया।" मैंने डरी हुई आँखों से उस चमचमाती सीढ़ी को देखते हुए कहा।

ये हैं इस कोठी बनाल के बाशिन्दे

गाँव के ऊपरी तरफ के एक कोठी बनाल घर में मैंने लिखा देखा..1568। यानी यह घर मुझसे चार सौ साल बड़ा है। यह 1720 में कुमाऊँ में आया भूकम्प और 1803 व 1916 का गढ़वाल का भूकम्प झेल चुका है। साथ ही यह 29 जुलाई 1980 को आए 6.8 तीव्रता वाले भूकम्प में भी खड़ा रहा जिसने भयानक तबाही मचाई थी। इस भूकम्प का केन्द्र पिथौरागढ़ से 50 किलोमीटर पूर्व में था। इस भूकम्प के झटके दिल्ली तक महसूस किए गए थे। और तो और अपने बनने के लगभग 430 साल बाद अक्तूबर 1991 और मार्च 1999 में आए प्रलयकारी भूकम्पों में भी यह अडिग खड़ा रहा। गौरतलब है कि इनमें हज़ारों लोग मारे गए थे और कई हज़ार घायल हुए थे।

लेख भी तो यही कह रहा था कि इनमें लकड़ी के मोटे खम्भों (बीम) और दीवारों में लकड़ी के आड़े अवरोधकों का प्रयोग किया जाता था। इससे ये झटका झेलने में बहुत कारगर साबित होते हैं।

इन्हें देखने का अनुभव एकदम अनूठा था। जब हम नीचे आ रहे थे तब एक आदमी दौड़ता हुआ आया और पूछने लगा, "मैडम क्या आप इन घरों के पीछे की कहानी सुनना चाहेंगी?"

"हाँ...हाँ, क्यों नहीं। कहो।" मैं उत्सुकता से बोली।

"बहुत पहले की बात है। हर साल फसल पकने के बाद यहाँ लुटेरे आते थे। ये घर तब उन पर नज़र रखने के काम आते थे। लोग खुद को बचाने के लिए बालकनी पर खड़े होकर उन पर पत्थर बरसाते थे।"

"अरे वाह...यह तो दिलचस्प है!!" कहते हुए अचानक मुझे याद आया कि पहले कोठी बनाल घर में लकड़ी से बने एक ढाँचे ने मेरा ध्यान खींचा था। मुझे वो एक छोटे मन्दिर जैसा लग रहा था। उत्सुकतावश मैंने उससे पूछा ही लिया कि वो था क्या।

"नहीं, वह मन्दिर नहीं...कोठार (अनाज रखने की जगह) है। कुत्तार।" उसने बताया।

मैं भारत में जगह-जगह गई हूँ। वहाँ किस्म-किस्म के कोठार भी देखे हैं – लेकिन आज दिन तक इतना बड़ा और ऐसा खूबसूरत कोठार नहीं देखा। मैं हैरान थी। यह मोटी लकड़ियों से बना था और उसके खम्भे और बीम पर फूल और ज्यामितीय आकार बड़ी खूबसूरती से उकेरे हुए थे। उस समय के कलाकारों की कलाकारी को सलाम!

"अच्छा, तो यहाँ पूरे गाँव का अनाज रखा जाता है!" मुझे पक्का यकीन था कि इस बार तो मैं गलत नहीं हूँ।

पर नहीं... मैं फिर गच्चा खा गई थी। मुझे पता चला कि हर घर का अपना अलग कोठार होता है।

"और ये रही इसकी चाबी।" किसी ने पीतल की एक विशाल चाबी दिखाते हुए कहा। इतनी बड़ी और भारी चाबी मैंने ज़िन्दगी में पहली बार देखी थी।

हम एक कोठार के पास गए। उसने उसके बड़े-से छेद में चाबी घुसाई और खट से वो भारी भरकम दरवाज़ा खुल गया। मैंने भीतर झाँका, "वाह, अन्दर तो काफी जगह है।"

"हाँ, हमले के वक्त लोग खुद भी कुत्तार में छुप जाते थे।"

"और उस धातु की चेन को तो देखो!"

"हर कोठार के दरवाज़े से उसके मालिक की खिड़की तक बँधी रहती है यह चेन। इस पर एक घण्टी भी टँगी रहती है। जैसे ही कोई कोठार को खोलने की कोशिश करता है, घण्टी की आवाज़ पूरे गाँव को चेता देती है।"

अद्भुत! यानी वो हमलावरों की कहानियाँ सच थीं... किले जैसे घर, मन्दिर जैसे कोठार... इन सब से लगता है कि किसी ज़माने में यह क्षेत्र बहुत सम्पन्न रहा होगा। इसलिए अनाज वगैरह को लुटेरों से बचाना पड़ता होगा। यानी कोठी बनाल सिर्फ भूकम्परोधी ही नहीं हैं... चक मक

कोठार से मालिक की खिड़की को जाती चेन पर टँगी घण्टी

एक कोठी बनाल पर लिखी इबारत

और ये है... वो विशाल चाबी

म्यूरियल काकानी - बचपन से भारत आने का सपना देखती थी। और 1984 में जब गाँधी फिल्म देखी तब तो पक्का हो गया कि एक दिन मैं भारत में बसूँगी। अब भारत में रहते 20 से ज़्यादा साल हो गए हैं। अब तो बैल्जियम में अपने गाँव लेंग गए भी करीबन 15 साल हो गए हैं।

मैंने भारत का लगभग हर कोना-कोना छान मारा है। गाँव के लोगों के रीति रिवाज़, प्रकृति के साथ उनका मिल-जुलकर रहना... उनके प्राचीन वास्तु, जंगल का प्रबन्धन, हथकरघा, जल दोहन के उनके तरीके... राजस्थान में रेबारियों के साथ मैं ऊँट चराई पर गई हूँ, उड़ीसा में आदिवासी महिलाओं के साथ जंगल से कन्द खोदे हैं मैंने, मध्यप्रदेश में शहद इकट्ठा करनेवालों के साथ जंगल-जंगल घूमी हूँ, गढ़वाल और कुमाऊँ के दूर-दराज के गाँवों में पहुँची हूँ जहाँ लोग अपने पत्थर के घरों में मधुमक्खियाँ पालते हैं... मुझे यह सब अचम्भित करता है...

(तीसरी किस्त)

मगरमच्छों से शिकार छीनना और तेज़ बारिश

जसबीर भुल्लर

शेर मगरमच्छों के हमले करने की आदत से घबराता था। मरे हुए हिरण को वह मुँह लगा भी न पाया था कि उसे वापिस भागना पड़ा।

वह हाँफता हुआ फिर से पहलेवाली जगह पर जा बैठा।

अँधियारा धीरे-धीरे गहरा रहा था। अचानक चाँद बादलों से निकल आया। चाँद की रोशनी में लहरें चाँदी-सी चमकने लगीं। पानी में गिरा हिरण दूर से काले पत्थर जैसा दिख रहा था।

किरली और मग्धू मगरमच्छ वापिस जा चुके थे। हिरण को खाने की उनकी हसरत अधूरी रह गई थी।

शेर अभी भी डर रहा था। यह भी हो सकता था कि दोनों मगरमच्छ पास ही कहीं पानी की घास में छिपकर बैठे हों। वह मुर्दा हिरण के पास जाने का खतरा मोल नहीं लेना चाहता था। और वहाँ से जाना भी नहीं चाहता था। हिरण उसका शिकार था। वह अपने शिकार को वापिस लेना चाहता था।

समय धीरे-धीरे बीत रहा था। एक घण्टा...दो घण्टे और फिर पूरे नौ घण्टे। शेर अपने शिकार की ताक में भूखा वहीं बैठा रहा।

अचानक वह उठ खड़ा हुआ। उसने अँगड़ाई ली।

उस समय रात का चौथा पहर था। जंगल गहरी नींद में था। दूर कहीं गीदड़ बोला और फिर जंगल गीदड़ों की आवाज़ों से गूँज उठा।

शेर धीरे-धीरे नदी की ओर चल दिया। इस बार उस की चाल में पहले-सी तेज़ी न थी। नदी में पैर डालने से पहले उसने नदी की ओर देखा। पानी शान्त था।

उस समय चाँद फिर से बादलों में जा छिपा था। घुप अँधेरे में मरा हुआ हिरण दिखाई नहीं दे रहा था। परन्तु हिरण को देखने के लिए चाँदनी दरकार न थी। उसने कुछ कदम पानी में बढ़ाए और फिर आहट भाँपने को रुक गया। जंगल की आवाज़ों के सिवाए कहीं कोई आहट न थी। वह धीरे-धीरे हिरण तक पहुँच गया। एक बार फिर से उसने खतरे की गन्ध सूँघने की कोशिश की। उसने हिरण को मज़बूती से दबोचा और घसीटते हुए पूरी ताकत से किनारे की ओर भागा।

किनारे पर पहुँचकर शेर ने मुर्दा हिरण को हरी-भरी घास पर परोस दिया। सामने पड़े भोजन को मुँह मारने से पहले उसने आकाश की ओर देखा।

पहाड़ों में बिजली चमकी। बादलों की ओर तारे धूमिल हो गए।

मौसम साफ नहीं रहा था। शेर कल से अपने शिकार को फिर से पाने के इन्तज़ार में बैठा था। अब शिकार कब्ज़े में था तो उसकी भूख अचानक चमक उठी थी। और सब्र करना अब मुश्किल था। वह जल्दी-से भोजन की तरफ लपका। उसके नुकीले दाँत अँधेरे में चमक उठे।

अभी वह पेट भरने के काम से निबटा भी न था कि एक भयानक आवाज़ सुनकर ठिठक गया। माँस का भरा हुआ कौर उसके मुँह से गिर गया। गड़गड़ाहट की आवाज़ लगातार तेज़ होती जा रही थी। पानी दनादन उसकी ओर बढ़ रहा था।

शेर अपना भोजन वहीं छोड़ तेज़ी-से भागा। पर पानी शेर से कहीं ज़्यादा तेज़ था। कुछ क्षणों में ही शेर से बाज़ी मारते हुए पानी उसके ऊपर से गुज़रा। शेर ने कुछ देर इधर-उधर पैर चलाए और फिर अपना शरीर ढीला छोड़ दिया। उसका भारी शरीर पानी के बहाव के साथ बहने लगा।

बचपन से ही उसका नाम किरली था।

जब वह अण्डे से बाहर निकली तो देखने में छिपकली जैसी थी – छोटी-सी और कमज़ोर। वही कमज़ोर-सी किरली अब दैत्य का रूप ले चुकी थी। फिर भी उसका नाम किरली यानी छिपकली ही रहा।

भले ही उसका यह नाम हँसी-मज़ाक में रखा गया था, लेकिन इस में कोई शक नहीं था कि वह छिपकलियों की नज़दीकी रिश्तेदार थी। छिपकलियों की तरह मगरमच्छ भी रेंगनेवाले जीवों के वंशज हैं लेकिन उनका छिपकलियों से कोई मेलजोल नहीं रहा है। छिपकलियाँ मगरमच्छों से एकदम अलग हैं। छिपकलियों की तुलना में मगरमच्छ आकार में बहुत बड़े हो जाते हैं। यह लम्बाई मगरमच्छों की वर्तमान लम्बाई से ढाई-तीन गुणा अधिक थी। यह पता नहीं कितनी पुरानी बात थी? किरली मादा मगरमच्छ की याद्दाश्त में ऐसी बातें टिकती न थीं।

उम्र बढ़ने के साथ-साथ किरली मादा मगरमच्छ के सौन्दर्य को चार चाँद लग गए थे। उसकी त्वचा खुरदरी, मोटी तथा और भी सख्त हो गई थी। उसका मुँह खुला और बड़ा हो गया था। छोटे जानवरों को तो वह समूचा ही निगल जाती थी। उसके दाँत भी बड़े-बड़े हो गए थे। उसकी दुम भी लम्बी व मज़बूत हो गई थी। जिससे वह बड़े-बड़े जानवरों को भी पछाड़ देती थी।

मगरमच्छों की बस्ती में किरली की ताकत और सुन्दरता की चर्चा होती थी। गुणों में केवल मग्धू मगरमच्छ ही उसकी बराबरी कर पाता था। जब अलग घर बसाने का समय आया तो दोनों ने एक-दूसरे को चुन लिया था। किरली के जीवन में खुशियों भरे दिन थे।

पर आज किरली का मन बुझा-बुझा सा था। उसे लगा कि वे दिन कितने अच्छे थे जब वह अपने भाई-बहनों के साथ रहती थी। सारा दिन खेलने छीना-झपटी के अलावा कोई काम न था। आँखें मूँदकर किनारे पर धूप सेंकने का मज़ा ही कुछ और था। तब तो पेट भरने की चिन्ता भी नहीं करनी पड़ती थी। माँ शिकार करती थी और माँस के टुकड़े चबाकर उसके मुँह में डाल देती थी। किरली उस कुचले हुए माँस को निगल लेती थी। उन दिनों तो मच्छरों का लार्वा, मेंढक, मछलियाँ, केंकड़े आदि भी उसके लिए स्वादिष्ट भोजन थे। लेकिन वे दिन तो कब के बीत चुके थे।

चित्रः अतनु राय

उस समय रात का आखरी पहर था।

आकाश कुछ साफ नहीं था पर तारे अब भी दिख रहे थे। पहाड़ों की ओर कभी-कभार बिजली कौंध जाती थी।

किरली ने चौंककर आँखें खोलीं। दूर झाड़ियों में मग्धू कुछ अजीब-सी आवाज़ें निकाल रहा था।

वे आवाज़ें किरली को उसकी ओर खींच रही थीं। पानी को चीरती हुई वह उसके पास पहुँच गई।

ऊँची झाड़ियों के कारण वहाँ पानी जमा था।

मग्धू ने शरारत से किरली पर छलाँग लगाई। किरली उसके नीचे फिसल गई। मग्धू उसके चारों ओर चक्कर लगाते हुए ज़ोर-ज़ोर से पानी में पूँछ पटकने लगा। स्थिर पानी झाग से भर गया। दोनों अठखेलियाँ करते हुए गोल दायरे में घूमते रहे। मग्धू बाहर की ओर था। धीरे-धीरे दायरे को छोटा करते हुए उसने अगले पैरों से किरली मादा के उपर छलाँग लगाई। मग्धू मगर के प्रेम में वह कल शाम भोजन के समय हुई निराशा को भूल गई। यदि उन से हिरण नहीं खाया गया तो भी क्या हुआ? और भी बहुत कुछ था जिसे वे खा सकते थे।

उस समय ठण्डी-ठण्डी बयार चल रही थी। जंगल में विभिन्न जीव-जन्तुओं की आवाज़ें गूँज रही थीं। नदी की लहरें तट से टकरा कर छपाक-छपाक का संगीत दे रही थीं।

अचानक गड़गड़ाहट का कर्णभेदी स्वर उसके कानों में पड़ा।

अगले अंक में जारी

जनवरी-फरवरी, बचपन ही से, बहन भाई से लगते हैं, ठण्ड में मुँह से धुआँ उड़े तो, लगता है कि लड़ते हैं ! - गुलज़ार

बोलीरंगोली

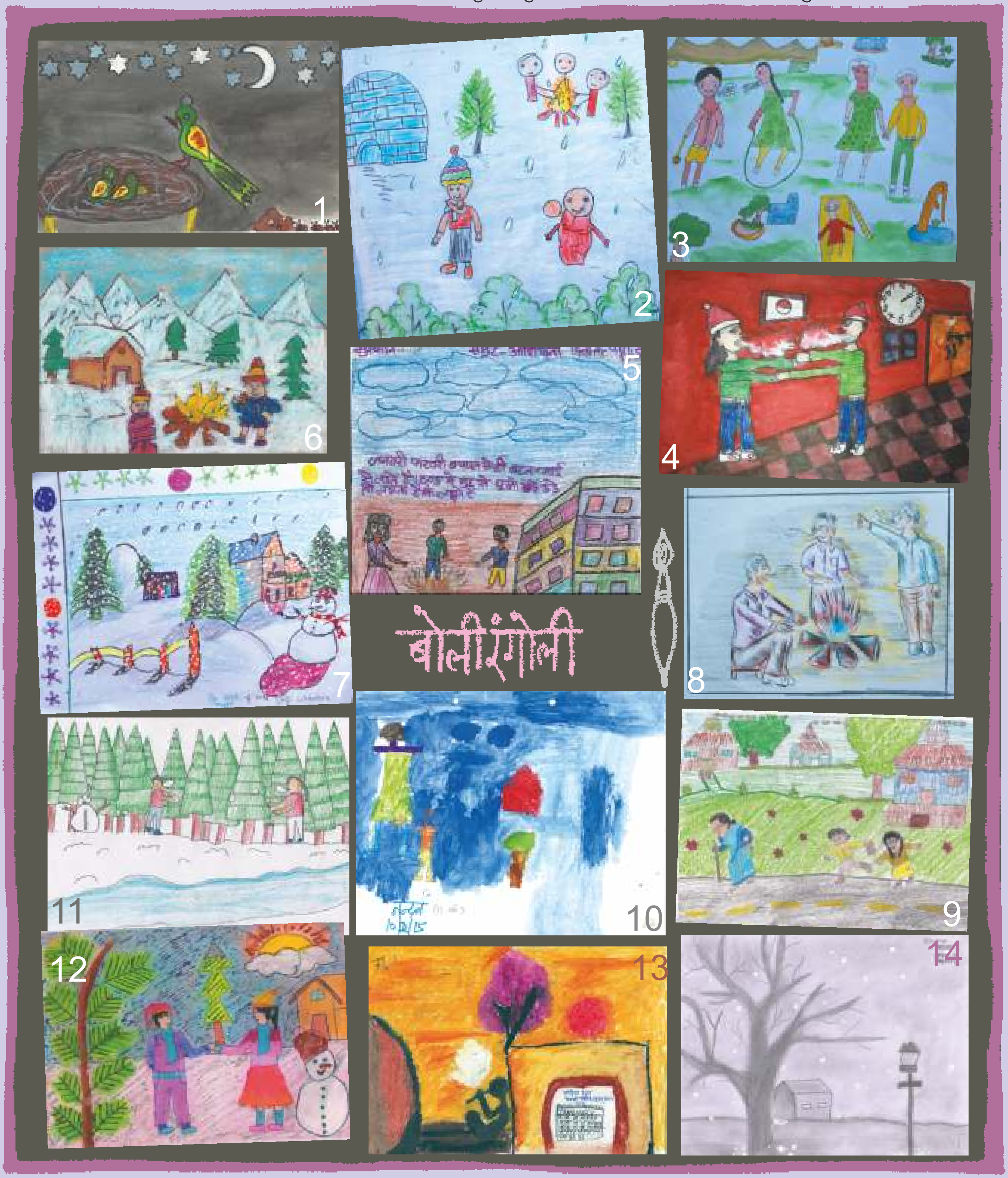

चुनिन्दा 14

1. मनीषा गुर्जर, पाँचवीं, सवाईमाधोपुर, राजस्थान। 2. तपस्या, तीसरी, एस.ओ.एस बालग्राम, भोपाल, म.प्र। 3. आरती कुमारी, छठी, किलकारी बिहार बाल भवन, पटना। 4. आतिफ तूफैल खान, छठी, दिल्ली पुलिस पब्लिक स्कूल, नई दिल्ली। 5. मुस्कान, आशियाना समूह, दिगन्तर। 6. बानी, तीसरी, डी.ए.वी, गुड़गाँव। 7. क्रिश मंत्री, चौथी, डी.पी.एस कोयम्बतूर। 8. धनंजय कुमार, छठी, किलकारी बिहार बाल भवन, पटना। 9. रितु डेका, छठी, केन्द्रीय विद्यालय नं. 1, भुज, गुजरात। 10. नन्दन, ग्यारह साल, आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल। 11. प्रियान्श कुमार, छठी, केन्द्रीय विद्यालय नं. 1, भुज, गुजरात। 12. गुरलीन, पाँचवीं, डी.ए.वी, गुड़गाँव। 13. आदित्य रंजन, छठी, डी.पी.एस, पटना। 14. इशान्या, चौथी, शिक्षान्तर, गुड़गाँव।

घोड़ा गाड़ी

-शरीफ अंसारी

काले-काले घोड़े की
काली-काली गाड़ी
मज़ा बहुत आता
जब बैठे अगाड़ी

पापा की देखो तो
उड़ रही दाढ़ी
मम्मी की पहिए में
आ गई साड़ी

पापा ने पकड़ी
मम्मी की साड़ी
मम्मी ने पकड़ी
पापा की दाढ़ी

काले-काले घोड़े की
काली-काली गाड़ी

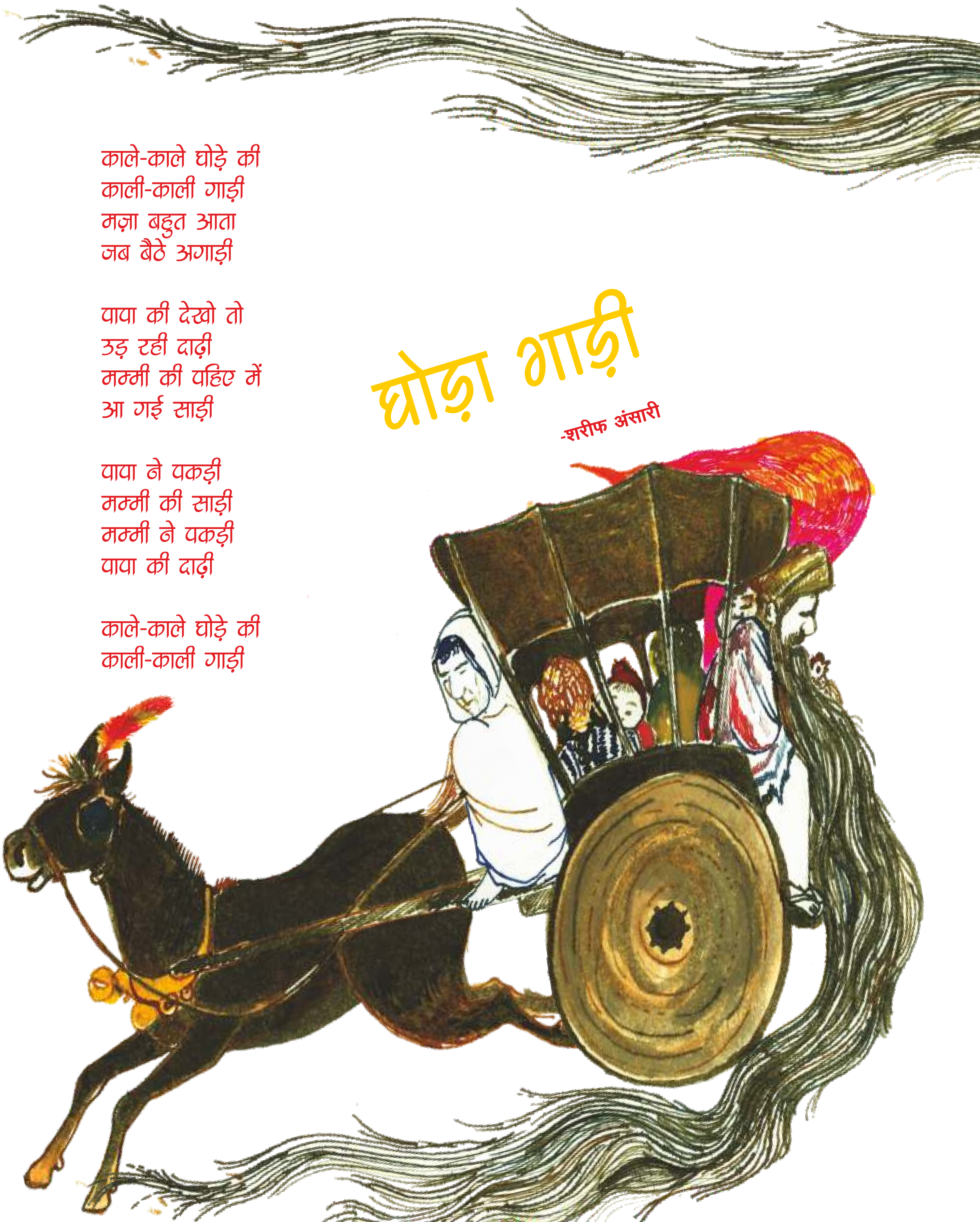

चित्र/डिज़ाइन - कनक

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / 261 / भोपाल / 2015-17

चित्र पहेली

► बाएँ से दाएँ ▼ ऊपर से नीचे

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से
प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोन: 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादक: सुशील शुक्ल